आँखों के रंग
(काव्य संग्रह)

आँखों के रंग

(काव्य संग्रह)

सुधीर नारायण

BlueRose ONE.com DIY
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Sudhir Narayan 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

For permissions requests or inquiries regarding this publication,
please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7825-434-5

First Edition: May 2026

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन
लेखनी कैसे चली-

प्रकृति का संदेश

१.	बर्षा की पीड़ा	१३
२.	सूर्यमुखी	१७
३.	काटों से प्यार	२१
४.	वृक्ष की आत्मकथा	२५
५.	प्यासी झील	२९
६.	पतझड़	३३
७.	सूरज की वेदना	३७
८.	शान्त शिखर	४१
९.	अनल की ईर्ष्या	४५
१०.	ईख का माधुर्य	५१
११.	बांसुरी	५५
१२.	मुखर पाषाण	५९
१३.	मकड़ी का बन्धन	६३
१४.	बीज की पुकार	६७
१५.	तिनका	७३
१६.	निर्विकार आकाश	७७
१७.	सुमेरु और सागर	७९
१८.	सागर का गुप्तदान	८३
१९.	ऋतु परिवर्तन	८५
२०.	अर्धचन्द्र	८९
२१.	एक शेर तीन बन्दर	९१

मानव प्रकृति

२२. आँखों के रंग ९५
२३. कटी पतंग १०१
२४. अपूर्ण मूर्ति १०५
२५. पराधीन सुख १११
२६. मौन ११५
२७. मृत्यु का उत्सव ११९
२८. कुम्भकार १२५
२९. ब्रह्मपुत्र १२९
३०. ईश्वर की यात्रा १३३
३१. मन मन्दिर १४१
३२. बुद्धं शरणम् गच्छामि १४५
३३. मै भाग्य लिख रहा हूँ १४९
३४. आर्शीवाद १५३
३५. प्रभु दर्शन १५७
३६. मानव का मूल्य १६१
३७. कालजयी १६५
३८. तृष्णा १७१
३९. माँ की शिक्षा १७५
४०. नमन १७९
४१. चरण १८३
४२. सूर्यवंशी १८७
४३. स्वंय पर निर्णय १९१
४४. ध्येय दृष्टि १९३
४५. तीसरा जन्म १९७
४६. व्यक्त २०१
४७. आत्मा की कामना २०२

प्राक्कथन

कविता की विशेषता सर्वप्रथम उसकी मौलिकता में निहित होती है। साथ में सामाजिक सरोकार हो और भाव प्रवणता हो ताकि पाठक बंधा रहे और शब्दों का उलझाने वाला जाल न हो तो फिर ऐसी कविताएं सर्वोत्तम की श्रेणी में अपना स्थान बना ही लेती हैं। खासकर जीवन दर्शन को जटिलताओं से निकालकर सहज ढंग से प्रस्तुत करना भी पाठक को विशेष रूप से अपनी तरफ आकर्षित कर सकता है अपने काव्य संग्रह 'आंखों के रंग' में कवि सुधीर नारायण अपने को सहज ढंग से व्यक्त करने और पाठकों को अपने मंतव्य तक खींचने में सफल हुए हैं। संग्रह की हर कविता सर्वोत्तम है। हर कविता में जीवन की वास्तविकता है, साथ में दर्शन भी है, सृष्टि का आदि भी है और अंत भी, भावनाओं का ज्वार भी है। हर कविता जीवन मूल्यों को परत दर परत उतेरती जाती है और पारंपरिक अवधारणाओं को उधेड़ती भी जाती है। हर कविता में गहराई है और ऊंचाई भी है, संवेदनाएं हैं लेकिन कृत्रिमता नहीं है। लेखक ने जीवन के किसी रंग को अनदेखा नहीं किया, अपने वैचारिक मंथन द्वारा एक तरह से जैसे आत्मा का पोस्टमार्टम ही कर दिया हो।

कवि सुधीर नारायण ने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए कविता को माध्यम चुना। वैसे वह लब्धप्रतिति चित्रकार भी हैं जहां अपने मानस को चित्रों के माध्यम से व्यक्त करने के लिए वह बहुरंगी तूलिकाओं का प्रयोग करते हैं लेकिन कविता लिखते समय उन्होंने सपाटबयानी का सहारा ज्यादा लिया है। कुछ विशिष्ट कविताओं को छोड़ दें तो तुकबंदी या किसी भी शास्त्रीय नियम का अनुपालन करने की जिद उनमें नहीं दिखाई पड़ती है। उनकी कविताओं में शब्दों का जाल न होकर भाव प्रमुखता पर अधिक बल दिया गया है। कविताओं का विषय वैविध्यपूर्ण है। जड़-चेतन सभी को लिया है, धार्मिक समरसता की बात की है, ईश्वर के एकात्मरूप 'एको अहम् बहुस्यामि' की चर्चा की है, विभिन्न धार्मिक संप्रदायों का मूल तत्व एक बताया है। उनकी हर कविता की अंतिम पंक्तियां उपदेशात्मक होती हैं मानों पाठकों की सुविधा के लिए कविता के साथ उसका सार भी दे दिया हो।

सुधीर नारायण की कविताएं पाठकों को बांधे रखने में सफल हैं। चलताऊ विषयों को न लेकर सुधीर नारायण ने ईश्वर के साथ प्रकृति विषय को काव्य संग्रह के लिए प्रमुख रूप से चुना है और उनमें नए बिम्ब तलाशे हैं। जिन विषयों पर अपनी कलम चलाने की कोई सोच भी नहीं सकता है, उन पर कवि सुधीर नारायण ने अपनी लेखनी चलाकर उन चीजों के प्रति लोगों का नजरिया बदल देने में उन्होंने सफलता हासिल की है। मसलन, 'ईख'

कविता को ही ले लें, कवि उसे प्रकांड पंडित अष्टावक्र बताकर उसका ऐसा महिमामंडन करते हैं जो विस्मित कर देता है। वह ईख के त्याग का वर्णन करते हैं और कहते हैं:

'हे मानव!
बाह्य आकार न देखो
अंतः धारा को देखो
मेरे टुकड़े कर दो
मुझे अग्नि में तपा दो
मैं मधुर रस पिलाकर
सबका जीवन सुखमय करता।।'

'बांसुरी' कविता को ही ले लीजिए। बांस से लाठियां बनती हैं जो संहार करती हैं। लेकिन जब उनमें छेद कर दिया जाता है तो वह चीखता नहीं है:

चीख के एक शब्द न निकले
पीड़ा सहते हुए बांसुरी बन गया
मैं अब
संगीत सुनाता हूँ।'

'पाषाण' कविता की बात कर लें। मानव को साहसिक बनाने के लिए प्रेरित करती है यह कविता। पाषाण अपनी व्यथा को बहुत ही सुंदर ढंग से अभिव्यक्त करता है:

'कितने हथौड़ों को सहन किया
मेरे तन मन का
छेदी से छेदन कर दिया गया
आज मैं खुश हूं
ईश्वर के रूप में
मेरी पूजा हो रही है
ध्येय के लिए
अग्निपथ पर चलना था।'

कवि का आध्यात्मिक लगाव उनकी कविताओं में परिलक्षित होती है। दर्शन जैसे विषय को बहुत सरलता से कविता के माध्यम से स्पष्ट करना उनका यह श्लाघनीय प्रयास माना जाना चाहिए। 'वृक्ष की आत्मकथा' कविता में वह लिखते हैं:

वृक्ष ने कहा: मेरी प्रशंसा न करो

उस बीज की करो जिससे
मैंने स्वरूप लिया।'

अर्थात मूल कारण को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। 'पतझड़' कविता के अंत में कवि सचेत करते हुए लिखते हैं:

याद रखो
सबके जीवन में
पतझड़ आता है।'

'मौन' कविता में कवि हंस और कछुवे के मध्यम से मौन का महत्व बताते हुए कहते हैं:

आज मानव भी
अपमानजनक, कटु वचन को
सहन न कर
वाणी की प्रतिक्रिया से
स्वयं का अहित कर रहा है
मौन रहना न सीखा।'

'आंखों के रंग' कविता में प्रकृति के विभिन्न रंगों को आत्मसात करने के बाद कवि कहते हैं:

चित्रकार थक गया था
अब मानव स्वयं अपनी आंखों में
वह रंग भरे
जो उसकी आंखों में है
मानव मानव के दोष देखता है
ईश्वर में भी दोष देखता है।''

'मानव का मूल्य' कविता की अंतिम पंक्तियों में बहुत ही दार्शनिक बात कही गई है

'आज मंदिरों में
भक्तगण मस्तक पर भस्म लगाते हैं।
जीवन का अंतिम सत्य क्या है
मानव का मूल्य क्या है ?'

'कुंभकार' कविता को नियति और प्रारब्ध से कवि जोड़ते हुए कहते हैं कि उसी मिट्टी

से वही कुंभकार शीतल जल रखने के लिए घड़ा बनाता है और दूसरी तरफ चिलम भी, जिसमें मादक पदार्थों के साथ अंगारे भी रखे जाते हैं:

'चिलम चीख उठी
मुझको दग्ध दायक
औ कुंभ को शीतलता दायक
मेरा दोष क्या है?'

कवि ने कुछ व्यवहारिक बातें भी कविता के माध्यम से बताई हैं जैसे प्रणाम करना। 'आशीर्वाद' कविता में सबको प्रणाम करने से उससे हासिल होने वाले लाभ के महत्व को बताया है कि किस तरह से सबका आशीर्वाद लेते रहने से अल्पायु वाला व्यक्ति दीर्घायु भी हो सकता है।

'मृत्यु का उत्सव' कविता में किसी प्रिय के निधन पर भी शोक नहीं मनाने बल्कि अधूरी इच्छाओं को पूरी करने के लिए उसको नया जन्म मिलना बताया है।

कड़वे संबंधों को छोड़
नए संबंधों में
मधुरता होगी
आसक्ति में बंधा था
अब मैं निर्मुक्त हुआ
अब मैं कोरा कागज हूं
आज आनंद मनाओ
यहां आनंद सभा होने दो।

ईश्वर और गरुण के वार्तालाप के माध्यम से यह बताने की कोशिश की गई है कि पृथ्वी पर मौजूद हर प्राणी ईश्वर की ही संतान है। फिर मंदिर मस्जिद गिरजाघर आदि पर धर्मयुद्ध क्यों ?'

'सूरज की वेदना' कविता में सूरज का मानवीकरण करते हुए सूरज की पीड़ा को भी रेखांकित किया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को आलोकित करने के लिए उसे हमेशा जलते ही रहना होता है।

'मेरे तप को किसने देखा ?
तज्ञता इतनी भी नहीं
प्रातः प्रणाम करे ?'

'अनल और जल' कविता में कौन श्रेष्ठ है। उसमे अनल की बेबसी झलकती है। अनल पूछता है:

'मेरा क्या दोष
जलाने पर ही तो जलता हूं!'

'कटी पतंग' के माध्यम से कवि ने बताया है कि जो बंधन से मुक्त होना समझते हैं, उन्हें यह अहसास नहीं होता है कि वे किन्ही अदृश्य हाथों के गुलाम बन चुके हैं। जिस बंधन में समर्पण होता है, वही प्रेम होता। 'पराधीन सुख' कविता में कवि और स्पष्ट करते हैं कि यदि रिश्तों में समर्पण नहीं है तो वे बोझ बन जाते हैं:

'मैं विहार करूं
या किसी तरु में निवास करुं
चूं चूं करते बच्चों के लिए
संध्या से पहले आती हूं।'
'दु:ख का कारण
शरीर अपना मन दूसरे के बंधन में
तब पराधीन मन सपनेहुं सुख नाही।'

ये वैविध्यपूर्ण कविताएं पाठकों को विचार के नए स्तर पर ले जाएंगी जो उन्हें आनंदविभोर भी कर सकती हैं, ऐसी मुझे आशा है।

स्नेह मधुर
११/७, डालीबाग, तिलक मार्ग,
लखनऊ -२२६००१
मो० - ९४१५२१६०४५

लेखनी कैसे चली

मनुष्य जानते हुए भी अनजाना है। चलना जानता है-कहाँ जाना-कहाँ नही-विस्मय में है। जानता है कि गलत मार्ग में चल रहे हैं फिर भी उसी र्माग पर चले।

आहार ग्रहण करना जानता है-लेकिन नहीं जानता-क्या खायें क्या न खायें। जानकर भी गलत खाये-बिना परिणाम समझे।

मनुष्य को वाणी मिली। क्या बोले क्या न बोले - न जाना। गलत बोलने का क्या परिणाम होगा - न जाना।

आखें हैं - दूसरे की आंखों मे तिनका भी देखा - अपनी आंखों से स्वंय अपने को न देखा।

कानों ने सुना - दूसरे की भलाई-बुराई। स्वंय की अर्न्तआत्मा की आवाज को न सुना।

हस्त ने उपकार किया - अपकार किया - यह न जाना खाली हाथ जाना है।

तभी प्रकृति मानव को उपदेश देने आई।

आकाश ने कहा- मै सदैव निर्मल लेकिन काले मेघों ने मुझे आच्छादित कर काला कर दिया। तुम अपने चित्त को काले मेघों से न भरना।

जल निरन्तर प्रवाह का संदेश दे रही है 'चरैवेति चरैवेति' पत्थर हो या कंकण, वन हो या मरुस्थल, रुकना नहीं-बढ़ते चलना है।

वृक्ष ने मानव से कहा - मैं बीज से उत्पन्न और तुमने भी बीज से आकार लिया। जगत देख रहा है किसने क्या फल दिये।

स्थूल उत्तंग गिरि-तूफानों को भी सहकर अविचल है - मानव तुम हल्की झंझा से विचलित हो रहे।

सागर अपने उछलते-कूदते लहरों को अपने से बाहर न किया - मानव अपने परिवार की उथल-पथल को ही नहीं समा पा रहे।

पषु-पक्षी भी उपदेश दे रहे। काली कोयल की कुहू-कुहू और काक की कांव-कांव। एक से लगाव दूसरे से दुराव। भाषा प्यार की या विलगाव की।

पाषाण भी उपदेश दे रहे हैं।

सबके पदतल हम सहते - फिर भी चीख नहीं।

प्रकृति का कण-कण ज्ञान दे रहा।

वह परम गुरु है। वह श्रव्य नहीं - दृश्य है।

सुनना नहीं - केवल उसको देखना है। उसको ढूढ़ने कहीं नहीं जाना - वह अपने पास मे है।

उसके सौन्दर्य को देखें-अन्तः पीयूष बहे, अन्धकार मे - दीप जले,
दो विहंसते युगल फूलों को देखें-प्यार जगे।

मानव की अज्ञानता और प्रकृति के सदुपदेश देख यह लेखनी चल पड़ी-
प्रकृति के सौन्दर्य से जब ज्ञान मिले तब अपनी लेखनी को सफल मानूंगा।

सुधीर नारायण

वर्षा की पीड़ा

मैं वर्षा
स्वर्ग से
नभ में उतरी
हृदय घट में सुधा रस था, हिमगिरि पर बरसाया
लेकिन यह क्या?
उसमें था अहंकार
उत्तंग होने का
अन्तः हृदय में कठोरता
उस पर सुधा-रस बरसाना
व्यर्थ रहा।

धरती पर उतरी मैं
स्वागत हुआ
धरती मेरी माँ,
हृदय में समायी
सरस बह चली
धरती प्रसन्नता से हरित हो गई
पादपों से सुगन्धित हो गई समीर,

तरुओं में मधुर फल शोभित
खेत लहलहाये।

लेकिन, मेरी अधिक वर्षा को
धरती सहन न कर सकी
आई बाढ़
खेत-खलिहान नष्ट होते गये
हाहाकार हुआ
समृद्धि विनष्ट होने लगी
मेरे प्रति हुआ जन-जन का आक्रोश,
तब धरती छोड़ आगे बढ़ चली,

सागर से मिली
मिलते ही मुझे उसने
अपने में समा लिया
उसमें ऊँचे होने का अहंकार न था
हृदय में प्रेम की गहराई थी
सबको समा लेने की शक्ति थी
मिलने से
उसमें न आई बाढ़
न कोई बोझ,

उसे हुआ आह्लाद
लहरों में उठीं उत्ताल तरंगें -
सागर आज भी प्रसन्नता से लहरा रहा
मानव ने मानवता को न समाया
सागर नित्य नदियों को समा रहा है।

जीवन यात्रा में देखा
अहंकार की निष्ठुर ऊँचाई
प्रेम हृदय की पावन गहराई।

सूर्यमुखी

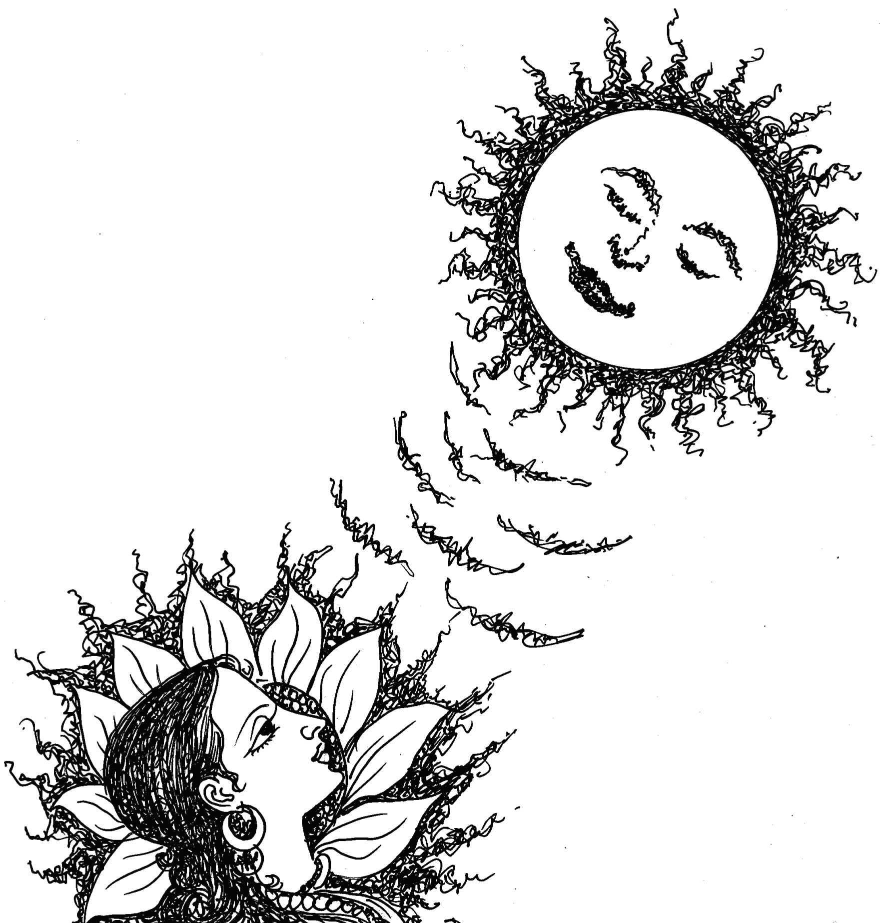

सूरजमुखी से
सूरज ने किया निवेदन
हे प्राणप्रिये! तुमसे मिलने
आ रहा हूँ करोड़ों मील से
आकाश ने अवरोध उत्पन्न किया
अन्धकार के काले वितान का
आच्छादन डाला,
लेकिन मेरी प्रकाश की किरणों ने उसे
समूल नष्ट कर दिया,

आकाश ने
पुनः चक्रव्यूह रचा
धरती से बारह मील तक
ओजोन के सात पहरेदार
सशस्त्र खड़े थे,
लेकिन मेरी करणी सेना ने
उनको भेदकर मेरा मार्ग बनाया।

धरती पर उतरा
मेघों ने मेरी किरणों को रोका
फिर भी उनको छेदन करके आया।

उषा किरणों को स्पर्श कर
कमल दल खिल उठे
आनन्द का रस छलका
भ्रमर-मधु रस लेने आये,
और देखो...
उलूक मेरी किरणों को
सहन न कर सके
अपने नेत्र बन्द कर लिये,

मैं प्राणों का प्राण उनको भी प्राण दिये
मैं तो सबका प्राणदायक हूँ।
लेकिन हे सुमुखि ! तुम्हारे नयन मुझको अपलक निहार रहे हैं
तुम्हारे नेत्रों का श्वेत पटल निहारते-निहारते काला हो चला
तुम्हारी धवल श्वेत पांखुरियाँ
मेरे स्वर्णिम स्वरूप का
ध्यान करते करते
पीतवर्ण हो चलीं,

हे तपस्विनि !
जिस डगर मेरे पग
उधर तुम्हारे नयन
जिधर मेरा प्रकाश उस ओर
तुम्हारा गमन
अविचल अनुसरण अविरल समर्पण है।
हे प्रेम पुजारिन !
तुम्हारा
प्रेम अमर है
मेरा वरदान
विश्व में आज से तुमको कहेंगे
'सूर्यमुखी'
अक्षि बीज
औषधि बन
दिव्य रस देगें
विश्व का होगा कल्याण।

काँटों से प्यार

वाटिका में गुलाब के फूल
मुस्कुरा रहे हैं, महक रहे हैं
मधुर मलय सुगन्धित हो रहा है
माली उन मुस्कुराते - महकते
गुलाब के फूलों को तोड़ने को आया
तभी वे सुमन चीत्कार करने लगीं,
हे माली! तुम मेरे जन्म के
कारण एवं पालनहार
आज मेरे प्राण क्यों ले रहे हो ?

'मैं बाजार में तुमको बेचूँगा
तुममें सौन्दर्य है, सुगन्ध है
मन को मोह लेने का आकर्षण है
तुमको लोग खरीदेंगे
देव मन्दिर में
पूजन में समर्पित करेंगे
या नारियों का श्रृंगार होगा
यही नहीं
तुमको धागे से बाँध कर हार बनाऊँगा
महाराजाओं के वक्षस्थल को वह सुशोभित करेगा,
नारियों के हृदय को आह्लादित करेगा ,
या मन्दिर में देवों के हृदय का हार बनेगा,

हे माली !
मैं तो काँटों के तने से बँधी हूँ
वह मेरा जीवन संगी है
उसी के साथ पली-बढ़ी
लोग कहें - वह काँटा है
लेकिन वह मेरा प्यारा है,
वर्षा होने पर मैं पतझड़ हो जाऊँ

ओले पड़ने पर मिट जाऊँ लेकिन प्यारा काँटा
सब सहन कर मुझे साहस देता
वह मेरा कवच है
जब कोई मुझ पर आघात करे वह उसको पीड़ा दे।

उसके न रूप को देखो न रंग को,
मानव काँटों की पीड़ा सहन नहीं करते
मैनें काँटों को स्वीकार किया है, सहनशीलता सीखी है
हे माली ! तुम मुझे तोड़ लोगे
तब भी मुस्कराती रहूँगी
सुगन्ध वितरित करती रहूँगी
मेरी अनुनय मानो
मेरे साथ इन काँटों को भी ले चलो,
माली! तुमने मुझको फलते-फूलते जीवन से वंचित किया
फिर भी जिसके निकट जाती हूँ
सुगन्ध फैलाती हूँ
उसके अधरों पर अपनी मुस्कान देती हूँ ,

स्वयं के मुरझाने की व्यथा
किसी से नहीं कहती
मेरा साथी तो काँटा है,
माली! मेरे पुष्पों से हार बनाना
उसमें काटों को भी गूँथना
यही मेरी कामना है।

वृक्ष की आत्मकथा

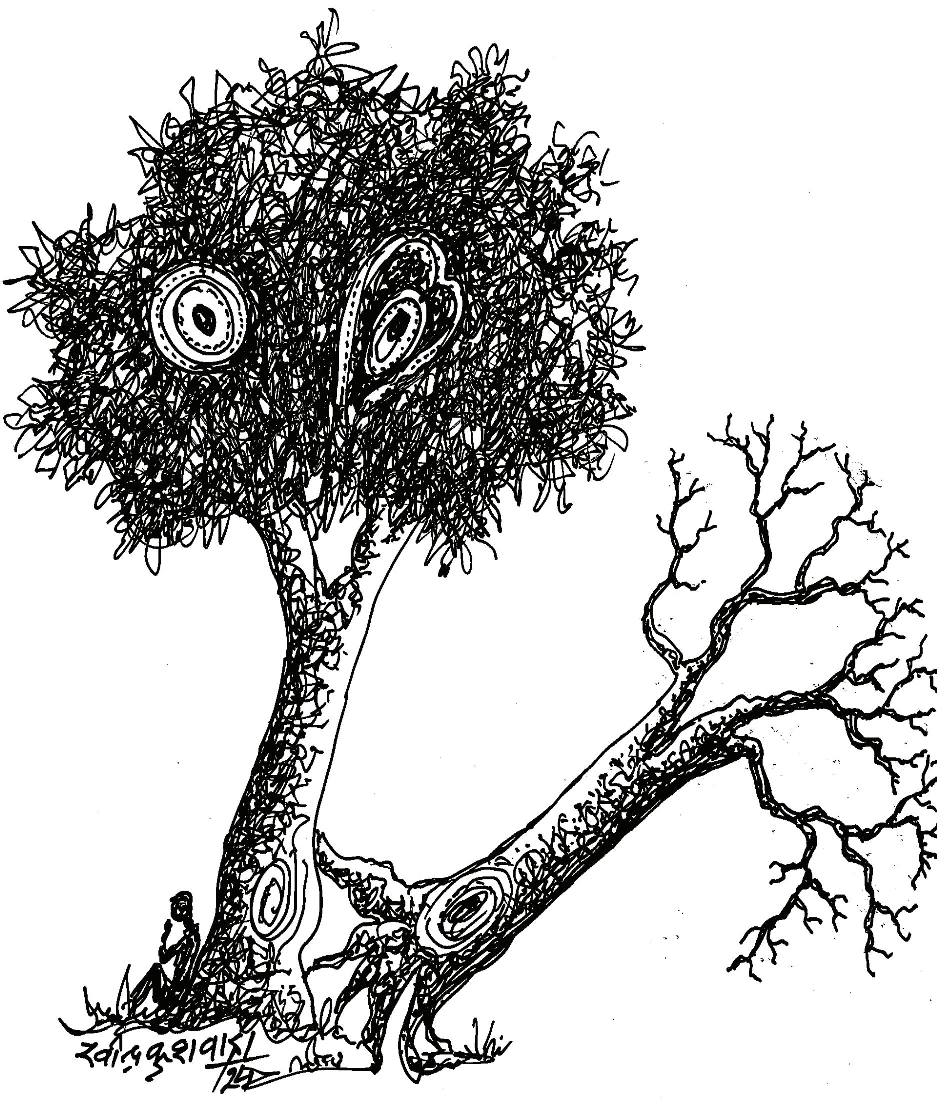

तपती धूप थी
आम्रवृक्ष था
उसकी सुखद छाया में बैठ गया
उसने मीठे फल दिये
उसकी मधुरता का आनन्द ले रहा था
वृक्ष की प्रशंसा में हृदय विभोर था।

वृक्ष ने कहा- मेरी प्रशंसा न करो
उस बीज की करो
जिससे मैने स्वरूप लिया
यही नहीं, उसने बोया, सींचा, खाद दिया
और आज मैं उसी का स्वरूप हूँ।

हे मानव! तुम भी बीज से बने
हम अचल, तुम चल
हम मूक, तुम वाचाल - तुममें मानवता के बीज थे
लेकिन तुम्हारे अन्दर मानवता न रही
गुरुकुल में शिक्षा ली
फिर भी मधुर फल न दे सके
एक वृक्ष ने दूसरे वृक्ष को न काटा,
लेकिन यहाँ मानव
मानव का संहार कर रहा,

मैंने अपने फल दिये, आनन्द लुटाया था
हे मानव! क्या किसी को तुमने
सहर्ष फल दिये या फिर किया व्यापार ?
मैंने जेठ की तपती धूप
शिशिर की सिहरन सहन की
तुमने शरीर को तन से ढका, महलों में वास किया
फिर भी रोगों से ग्रसित रहे।

हम मूक रहे लेकिन, हे मानव! तुमको वाणी और विचार दोनों मिले
लेकिन तुम अनचाही वाणी को सहन न कर सके,
मुझको लोग पत्थर मारते हैं
फिर भी सहन करता हूँ मानव मेरे तन को चीरकर
मेरी छाल से औषधि बनाता है
मैं मूक रह कर, सहर्ष स्वीकार करता हूँ।

एक दिन मैंने देखा तूफान के झोके में
वृक्ष की जड़ उखड़ गई
वह धराशायी पड़ा था।
बढ़ई आया
आरे से उसका तना काटा - मशीन से उसके पटरे निकाले
आज उन पटरों से बने फर्नीचर
लोगों के भवनों में सुसज्जित हैं।

हे वृक्ष, तुम धन्य हो !
तुम जन्म और मरण में भी परोपकारी रहे
मानव को संदेश दे गये
हे मानव!
मेरे जैसा परोपकारी बनो।

प्यासी झील

वर्षों बाद गाँव वापस आया
गाँव में सुन्दर झील थी
देखने गया
देख कर अवाक् रह गया,

झील में पानी न था, सूख चुकी थी,
सूर्य की भीषण तपन से
तलहटी में दरारें पड़ी थीं
इस झील में कभी
कमल दल का हास - विलास था,
मधुमक्खियों का मधु संचय था,

श्वेत हंसों का विहार था, ऊषा की लालिमा में
झिलमिल लहरों का होली मिलन
रजनी में चन्दा का स्वर्णिम श्रृंगार था
आज सब स्वप्न-सा विलीन हो गया।

जीव-जन्तु प्यास बुझाते थे
झील सूखी तो वे न जाने कहाँ गये
गृहणियाँ घड़े लेकर तट पर आती थीं
लेकिन आज भीड़ कुएँ पर लग रही।
हे मानव!
आज प्रेम-मेघ की वर्षा नहीं
हृदय झील रसहीन हुई
चिन्ता की तपन,
क्रोध की ज्वाला,
मानस में दरार पड़ी।

हे प्रभु!
सबके हृदय में
प्रेम-मेघ बरसे
झील - प्यासी है।

पतझड़

हे मानव!
यह अनुपम आम्र उपवन
आम्र मंजरी से सुगन्धित
नव पल्लव विहंसे
मेरे आम्रपत्रों से
अमृत कलश का श्रृंगार किया।
धरती पर मैंने आम्र बिखेरे - मानव ने झोली भर ली,
मधुर रस से हृदय तृप्त किया,
बसन्त बीता, अब पतझड़ आया,

जो पल्लव पूजे जाते थे
द्वार के बंदरवार थे
आज मानव के पदतल से
कुचले जा रहे कालचक्र में तरु के तने से
गर्दिश में हम गिरे
फिर भी मानव के चलने पर
पदतल को
सुख देते हैं।
हे मानव! याद रखो
सबके जीवन में 'पतझड़' आता है।

सूरज की वेदना

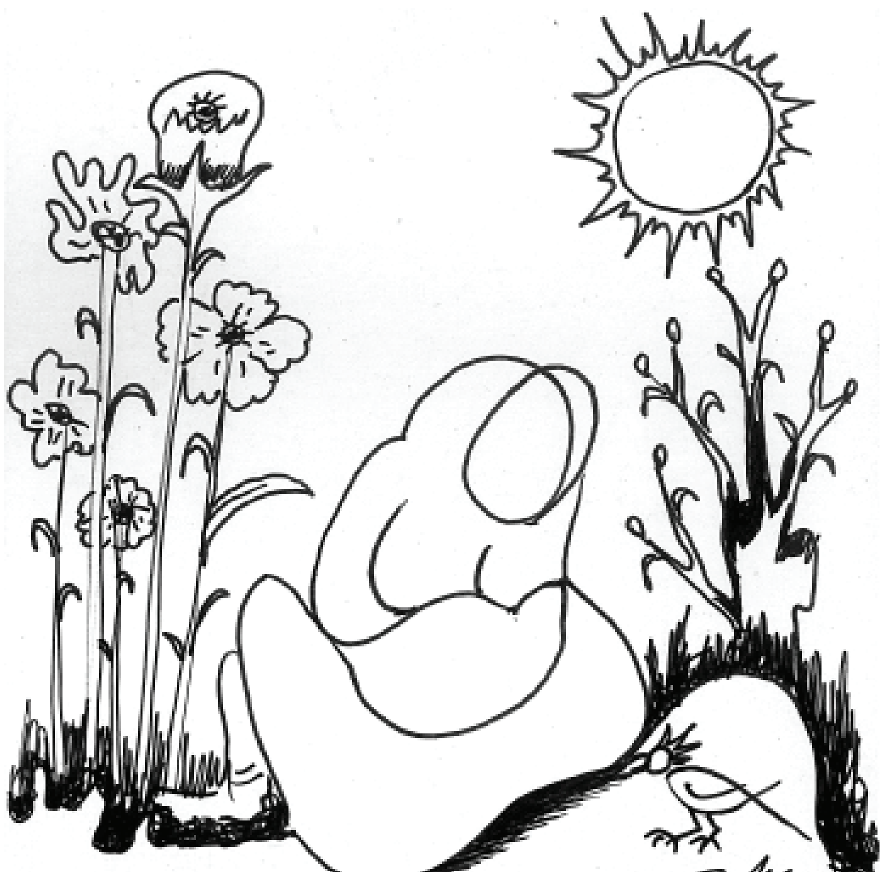

मैं सूरज हूँ !
विश्व को प्रकाश दे रहा
लेकिन किसी ने न जाना
प्रकाश देने के लिये
कितना तप करता हूँ
अपने तन को अग्नि में डाल
निरन्तर जल रहा हूँ
अब मैं आग का गोला हूँ।

धरती पर जब किसी ने अन्नकण बोये
अपने तेज से अंकुरित किया
आज लहलहाते खेत हैं।

सागर ने मेरी किरणों से ही
जल लेकर - मेघ बन कर
धरती को सिंचित किया
भावना मेरी - मानव पोषित रहे
सुखी रहे
मैं उसकी श्वासों में
नाड़ियों में भी
अहो रात्रि साथ हूँ।

मैंने ही निशा को निमन्त्रण दिया
ताकि मानव विश्राम करे
लेकिन मेरे तप को किसने देखा
कृतज्ञता इतनी भी नहीं
कि प्रातः प्रणाम करे।

शान्ति शिखर

विशाल पर्वत
गगन भेदी उँचाई
शिखा तक पहुँचता है,
यदि असम्भव नहीं
दुर्गम अवश्य है
चढ़ना आरम्भ किया
पग बढ़े, धीरे-धीरे
पगडंडी थी, कंकड़-पत्थर
कहीं देवदारु, कहीं चीड़ के तरु
जैसे-जैसे, ऊपर चढ़े,
पर्वत तरुहीन होते गये
वायु भी कम हुई
वर्षा हुई, हिमपात हुआ।
भय से पैर डगमगाये
दोनों ओर खाईं थी,
फिर भी बढ़ते गये।
एक दिन शिखर पर पहुँचे
प्रश्न किया
शिखर पर क्या मिला ?
'शान्ति' मिली,
हाँ, 'शान्ति',
नीचे कोलाहल था
यहाँ नीरवता,
नीचे प्रदूषण था
यहाँ स्वच्छता,
नीचे पाप था
यहाँ पावनता,
नीचे थी भीड़
यहाँ एकान्त,
मन एकान्त
चित्त एकान्त
शिखर है शान्ति का।

अनल की ईर्ष्या

अनल और जल के बीच
विवाद हो रहा था
मैं खड़ा सुनने लगा

अनल- मेरा प्रियतम संसार को
प्रकाशित करने वाला भास्कर है
मैं उसका अंश हूँ,
मेरी गति सदैव उर्ध्व होती है
और जल-तुम्हारी अधोगति होती है,

जल - मेरा प्रियतम सागर है
जहाँ भी रहूँ
पर्वत के शिखर पर या खाई में,
यात्रा कर सागर को ही समर्पित करती हूँ
तुम सबको जलाओ-मैं बुझाती हूँ
तुम्हारा काम जलाना
मेरा काम शीतल करना।

अनल - जलाना मेरा धर्म है
जल से तुमने मेरी बाह्य
अग्नि को बुझाने का कार्य किया
मैं प्राणियों के अन्तर में भी
ज्वाला प्रज्ज्वलित करती हूँ।

मैं सप्त जिह्वा हूँ-
काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता,
सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगनी, विश्वरुचि
बाह्य अग्नि हूँ जल डालने पर बुझती,
लेकिन मानव के अन्तः में अग्नि जलने पर
कोई बुझा न सका।

मैं क्रोध की अग्नि कराली हूँ
मानव के विवेक को नष्ट करती हूँ
काम की ज्वाला जलने पर
प्रतिक्षण जलाती हूँ
मन में उत्पन्न होने पर
मनोजवा कहलाती हूँ।

चिन्ता की ज्वाला
चिता की ज्वाला-सी जलती रहे
मृत्यु शैय्या पर भी
विश्राम न कर सके
मैं सुलोहिता हूँ।

ईर्श्या की अग्नि
चिन्तन धारा को दूषित करे
दूसरे को सुखी देख
नयनों से वाष्प अश्रु बहे ऐसी सुधूम्रवर्णा हूँ।

वाणी निन्दा की धौंकनी चलाए
वह स्फुलिंगनी चिंगारी हूँ।
लोभ से अन्य की सम्पत्ति में
रुचि लगे ऐसी विश्वरुचि हूँ।

मोह की मधुमयी अग्नि में
जीवन भर तापित करने वाली
मोहाग्नि हूँ।

जल - मेरा धर्म शीतल करना है
सागर में बड़वाग्नि भी मुझको जला न सकी
जले को शीतल करती हूँ

जहाँ दुर्विचार से ज्वाला उत्पन्न होती है
उसे सद्विचार की शीतलता से शान्त करती हूँ।

वहाँ न क्रोध की ज्वाला
न चिन्ता की चिता
न ईर्श्या से दहकता दिल है।

अनल - मेरा क्या दोष ?
अपने आप से नहीं जलती
जलाने से जलती हूँ
बाह्य हो या अन्तः हो।

जल - मेरा जन्म हुआ हिमखण्ड की गुहा से
और अन्तः मानस में - सद्विचार की धारा में
जो अवगाहन करे
शीतल शान्त हो जाये।
अनल - मुझमें समभाव है

तृण हो या तरुवन
झोपड़ी हो या सुवर्ण महल
जीवित हो या शव
सबको जलाती हूँ
तुममें वह समानता कहाँ
जहाँ तुम्हारा प्रवाह
वहाँ हरित धरती
जहाँ पदार्पण नहीं किया वहाँ मरुस्थल,

जल - यह समानता नहीं
अविवेक है
मुझको जो जहाँ ले चला

वहाँ चल पड़ी
बंजर में हरियाली
मरुस्थल में तरुवन उपजाती
मेरे जल से सींच-सींच कर खेत लहलहाये
तरु ने फल दिए
जहाँ मुझको कोई ले चले
वहाँ मैं हूँ।

धरती पर नदिया नाले-तालाब में मैं ही हूँ
मानस में - सद्विचार की धवल धारा हूँ।

निर्णय आपको करना है
उत्तम कौन है जल या अनल ?

ईख का माधुर्य

मैं हूँ अष्टावक्र,
कोई कहे टेढ़ा
कोई कहे पतला
कोई कहे मोटा
मेरे आकार को देख न विहंसो
मेरी न जाति है, न वर्ण
न पुरुष - न नारी हूँ
न देश - न विदेश की सीमा से बंधा
मैं जन-जन का हूँ प्रिय ईख हूँ।

अन्तः निराकार
ऊर्ध्व, मध्य, अधः
मुझमें मधु रस
अनवरत प्रवाहित,

हे मानव!
तुम केवल बाह्य आकार देखते
काया की कोमलता
सुन्दर नयन, बिम्ब अधर
पूछते जाति-वर्ण
लेकिन मानस घट में
भरे गरल रस
चित्त कलुषित,
किसी से राग - किसी से द्वेष
अपने अहं के शस्त्र से
जन-जन का करते संहार,
मुझमे अहं नहीं
कर दो मेरे टुकड़े - टुकड़े
न चीख न कराह
और मिठास फिर भी देते।

मुझे अग्नि में तपा दो
मैं तप कर भी
मधुर रस पिलाकर
सबका जीवन सुखमय करती,

हे मानव!
बाह्य आकार न देखो
अन्तः धारा को देखो,
अन्तः गरल नहीं
मुझमें मधु कलश भरा

मानो मेरी सीख
मेरे जैसा बनो,
मैं हूँ मधुर ईख।

बाँसुरी

मैंने
भवन के सुसज्जित
ड्राइंग रूम में प्रवेश किया
वहाँ बांस की बनी
सुन्दर पुष्पदानी में
विहँसते पुष्प गुच्छ
सुगन्ध बिखेर रहे थे
मुझे लगा वे मुस्करा कर
मेरा स्वागत कर रहे हैं।

मैने कहा- हे बांस !
तुम वन में अनजान रहे
यहाँ एक सुन्दर कलाकृति हो।

हे मानव !
मैं तुम्हारे हाथों में हूँ
मेरे तन से ही लाठियाँ बनाकर
मानव- मानव का संहार कर रहा
मैं स्वयं निरीह, निर्लिप्त और निर्विकार हूँ।

तुमने मुझको पटिया की चादर बनाकर
लहरों में डाला
मैंने जन-जन को
नदिया पार कराई
नदिया के ऊपर
मेरे अंगों से जाल बनाकर
तुमने सेतु बनाया
जन-जन के चरणों का स्पर्श कर
नदिया पार करा रहा हूँ।

और मैं अपना दुःख क्या कहूँ
मुझको पटिया बनाकर
मुझ पर शव को सुलाया और परिजन उसको
अपने कंधे पर रखकर चलते-चलते कहते-

‘राम नाम सत्य है
पार्थिव शरीर असत्य है’
पार्थिव शरीर मेरी पटिया पर है
निःश्वास निःशब्द,

इसी पार्थिव शरीर से
मानव जीवन भर
संघर्ष कर संग्रह करता रहा आज यमराज के सामने
बेबस सब छोड़ चला यही जीवन का अन्तिम सत्य।

एक दिन मानव ने छेनी से
मेरे अन्तस् का छेदन किया
चीख के एक शब्द न निकले
और पीड़ा सहते हुए
बाँसुरी बन गया - अधरों से स्वर निकले
मैं अब संगीत सुनाता हूँ।

भाग्य मेरा
कृष्ण ने अपने अधर से लगाया
स्पर्श से विह्वलित हुआ
प्रेम के गीत सुनाने लगा
गोपियाँ प्रेमातुर हो
रासलीला में निमग्न हुई।

हे मानव!
तू मुझमें स्वर भर दे,

मैं प्रेम के गीत गाकर
विश्व को प्रेममय कर दूँ।

मानव तू न कर सका
मैं करूँगा
अब मैं बाँस नहीं
बाँसुरी हूँ।

मुखर पाषाण

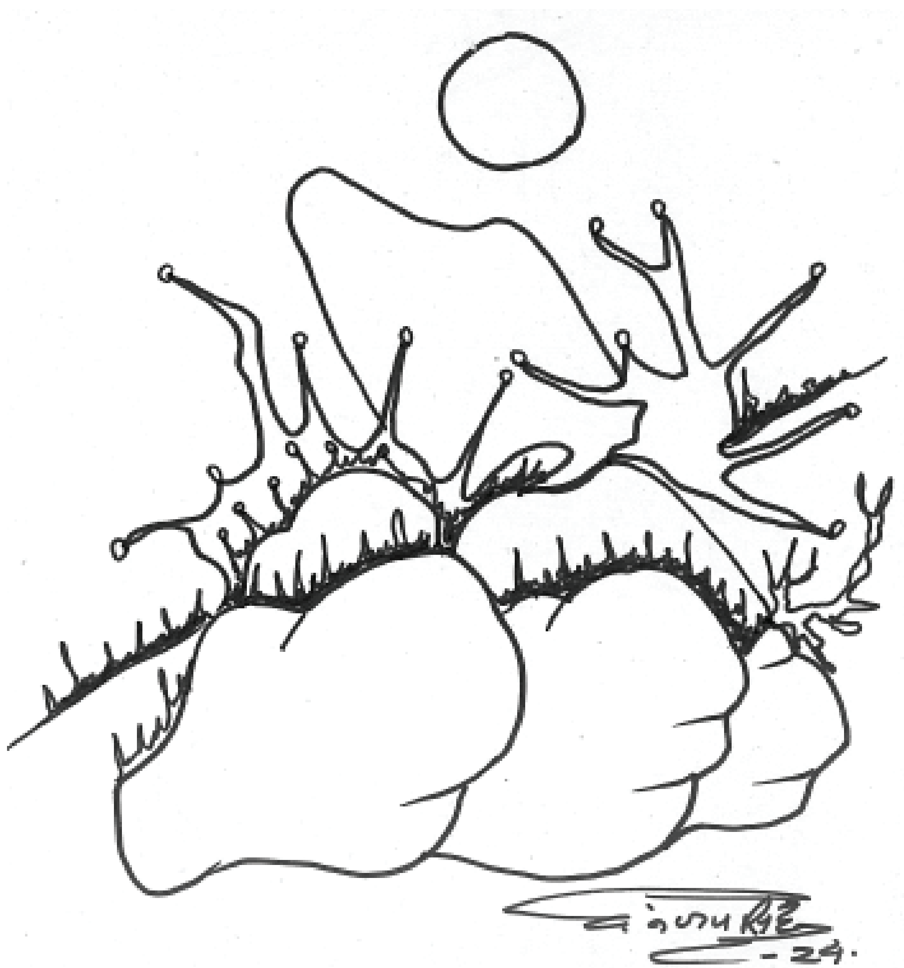

कल पाषाण का खण्ड था
आज खुश हूँ।

ईश्वर के रूप में
अब मेरी पूजा हो रही
लेकिन किसी ने न जाना
कि कितने हथौड़ों को सहन किया
मेरे तन का, मन का, बुद्धि का
छेनी से छेदन कर दिया।

पास में लौह खण्ड था
चिल्लाकर बोला-
तुमने तो केवल हथौड़े की पीड़ा सही
हमने अपने को स्वयं जलाया
तप्त लौह से आकार दिया
आज मैं नटराज रूप में
मन्दिर में विराजमान हूँ।

काला कोयला बोल उठा-
लोग कहें मैं कलंकित हूँ
लेकिन पिस-पिस कर
हीरा बना
माला में पिरोया गया
आज देवों के गले का हार हूँ।

सब पाषाण एक साथ बोल उठे- हे मानव!
तुममें संघर्ष का साहस नहीं
ध्येय के लिये
अग्निपथ पर जब चलना था
वेदना के भय से

तुम मंजिल की राह न चले
हारो नहीं, डरो नहीं, संघर्ष करो।

तुम्हारा मित्र पाषाण - सच्चा साथी
मुझ पर पद तल रख कर आगे
बढ़े चलो - बढ़े चलो - बढ़े चलो
चरैवेति चरैवेति।

मकड़ी का बन्धन

हे मकड़ी!
यह क्या किया तूने?
अपने पेट से लार निकाल कर
अपने ही चारों ओर फैलायी
और उसी में स्वयं बँध गई
लार का विस्तार होता गया
तुम घिरती गई
स्वयं का जाल
स्वयं का स्वयं से बधना रहा।

हे मानव!
तुम कब स्वतन्त्र ?

मन तुम्हारा
फिर भी मन के बन्धन में हो,

हाथ बंधे हैं
करेंगे वही जो मन कहेगा,

पैर बंधे हैं
जायेंगे वहाँ जहाँ मन कहेगा,

कान बंधे हैं
सुनेंगे वही, जो मन को भायेगा,
वाणी कहेगी वही, जो मन आदेश देगा,

शरीर तुम्हारा
लेकिन जाल मन का है।

मन को नियन्त्रित करेगा कौन ?
यह बुद्धि जो स्वयं निःसहाय है,

प्रभु और अपना अहं,
हमारे और प्रभू के बीच दीवार की भाँति खड़ा है।

अंहकार से ही है - राग और द्वेष
भय और संशय
यह बुद्धि का जाल है,
मित्र ! तुम ही बताओ
यह जाल कटे कैसे ?

केवल एक सरल उपाय
स्वयं का समर्पण
अपनी ही परम चेतना में,

छाया हुआ द्वन्द्व
वह विछिन्न होगा
बुद्धि जब ज्ञान- गंगा की
निर्मल विचारधारा में
अवगाहन करेगी

कलुषित चित्त के काले मेघ
विछिन्न होंगे
स्वर्णिम प्रकाश
मन - बुद्धि को प्रकाशित करेगा।

हे मानव!
तुम भी अपने जाल को
स्वयं काट दो
तुम जाल में बंधे नहीं,
जाल का भ्रम है।
जो ज्ञान से स्वयं मिट जायेगा।

बीज की पुकार

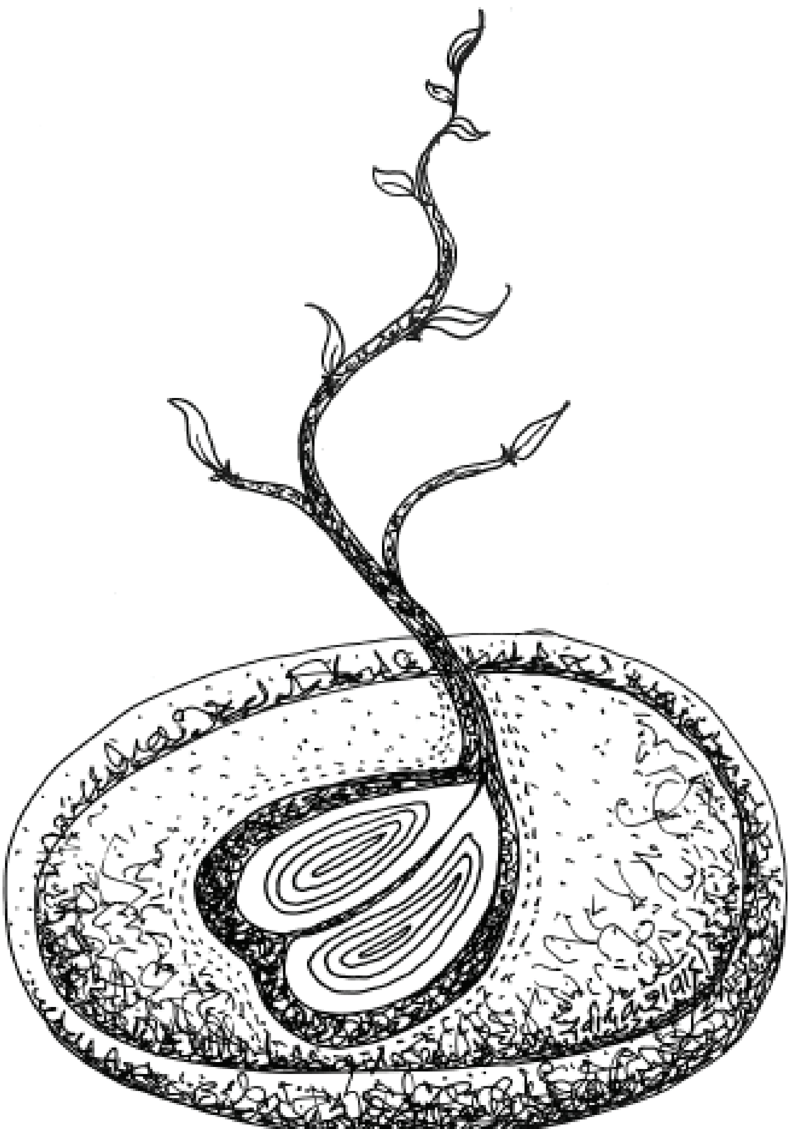

माली को मुझसे बड़ी आशाएं थीं
मैं नन्हा बीज
न रंग - न रूप - न सुगन्ध
धरती खोद कर अन्दर सुला दिया गया
जल से सींचा
एक दिन धरती से उठ
अंकुरित होने लगा।

माली हर्षित हुआ
कि मैं पुष्प बन कर किसी के अधरों को मुस्कान दूंगा
या श्रृंगार के लिये गूँथा जाऊँगा
या देव पूजन के लिये
कोई मुझे अर्पित करेगा।

तरु पर पुष्प खिले
सुगन्धित, मोहक और मधुर
मधुकर ने पुष्पों से मकरंद लिये
जिससे जन-जन में मधुरता का रस घोल सके।

मेरे पल्लव पवन के साथ
झूमते, मचलते, लहराते
उनमें आनन्द था, उल्लास था।

पल्लव तोड़े गये
उनसे बन्दनवार बना कर
भवनों के द्वार को सजाया गया
मैं प्रसन्नचित्त था
आज यहाँ सुन्दर छटा बिखेर रहा हूँ।

वैद्यों ने पल्लवों से
रस निकाल कर औषधि बनाई
प्रसन्न था किसी रोगी की पीड़ा हर सकूंगा।

बसंत आया
डालियों में फल लहलहाए हमने जन-जन को फल दिए
मैं देने में आनन्दित था
मानव की
भूख मिटेगी
उनका तन होगा सबल।

वैद्य आए
मेरी जड़ों की नसों को काटने लगे
उन्होंने देखा कि इसमें औषधि है
मैंने आह न की
मैं प्रसन्न था
किसी के तन में घुल कर
विष मिटा, अमृत रस घोलूंगा।

तरुणाई थी, तना घना था
मानव ने मेरे तन को चीरा
पर मेरे अधरों पर चीख न थी

यह नश्वर तन भी
मानव के लिए उपयोगी था।

वृद्धावस्था आ गई
विधाता ने धरती पर सुला दिया
जिस धरती पर खड़ा था
आज उसी धरती की गोद में था

प्राण पखेरू उड़ चले थे।

मेरे तनों को काटा गया डालियाँ सूखी पड़ी थीं
उन्हें चिता में जलाने के लिये अर्पित किया गया
मेरे तन की ज्वलित अग्नि से
दिवंगत की आत्मा को शान्ति मिले
यही कामना थी,
हाँ! धरती पर पड़ी मेरी राख खाद बने
उसमें मेरा पुनर्जन्म हो
यही मेरी कामना है।

हे माली !
तुमने मुझको धरती में बोया था
धरती पर आने पर
मुझसे आशायें थीं।

हे मानव!
मैं मूक था
कह न सका
तुम भी धरती पर आये
तुमने मानव की सेवा की
या निराश किया ?
तुम स्वयं जानो।

तिनका

आकाश के तले
वीरान में एक तिनका
जंगल में अनजान विश्व पटल पर
उसके अस्तित्व की क्या गणना ?
लेकिन उसमें आकांक्षा थी
आकाश को लाँघने की।

उसने याचना की पवन से
पवन - वेग से
उसे आकाश में लेकर उड़ चला,
फिर तूफान-बवंडर
धरती के धूल कण पवन के सहयोगी बने
तेज तूफान में
महल भी धराशायी होने लगे,

तूफान शान्त हुआ
तिनका स्वयं मिट चुका था
आकांक्षाओं के वेग ने ही
तिनके को अस्तित्व विहीन कर दिया।

दूसरा तिनका उपवन में था
वहाँ रुपहले फूल
बिखेर रहे थे अपनी सुगन्ध
तिनका उनसे आकर्षित हुआ
फिर जागी
उसको पाने की अभिलाषा
उसने प्रणय निवेदन किया-

'कहाँ तुम तिनके औ' मैं सोन्दर्य की देवी'
तिनके ने उसे मिटाने की ठान ली

उसने अंगारों से याचना की–
तुम उससे अधिक रूपवान
दहन करने की शक्ति है तुममें
इन सुमनों के गर्व को भस्मीभूत कर दो
मैं तुम्हारे साथ हूँ,

अनल ने याचना स्वीकार की
अब उपवन में अग्नि की ज्वालाओं में
वे महकते सुन्दर पुष्प दहक रहे थे
तिनका भी भस्मीभूत हो गया
यही नहीं फलों से लसित तरु
महकती पुष्प वाटिका
अग्नि की ज्वालाओं में जलते,
वे आकाश
को संदेश दे रहे थे –
''कामनाओं ने हम विहँसते
फूलों को अंगार बना दिया'',

पुष्प वाटिका में भ्रमण करने वाले
अब पुष्प वाटिका नहीं – शमशान को देखते हैं

किसी ने इस रहस्य को न जाना
कि किसकी कामाग्नि ने
इस उपवन को बंजर किया।

निर्विकार आकाश

हे आकाश!
तुम विरले, निराले,
निःसंग, निर्विकार,
संग मे रहते हुए भी निःसंग

घट-घट मे सीमित
फिर भी असीमित,

भानु का उदय
उषा ने आकाश को
लालिमा से रंग दिया
फिर भी रहे नीलाभ

काले मेघों ने घेरा
फिर भी न बंधे,
ध्वनि ने गुंजार किया,
तुमने सुना-फिर भी रहे मौन,

दामिनी तुम्हारे हृदय को चीरती चली
फिर भी विदारण न कर सकी,
तूफानो ने झकझोरा,
फर भी शान्त,
सूर्य ने तप्त अंगारो से जलाया
ज्वलित न हुए,
चन्द्रिका की शीतलता
शीतल न कर सकी,

लेकिन मेरा चित्ताकाश
प्रतिपल अन्तः पवन से
हो रहा है प्रकम्पित,
किसी वाणी से
मान-अपमान के स्वर
हृदय पर करें आघात

प्रिय-अप्रिय दृश्य
चित्ताकाश मे अमिट चित्र
बनाते चलते,
मन के सुख दुःख के कम्पन
शीत उष्ण की लहर से
करते रहते विचलित

हे मन !
देखो उस निर्मल-आकाश को
झंझावात मे भी निश्चल
कोलाहल मे भी शान्त

उसको सुनना नहीं
केवल उसका दर्शन करना है।
उससे शान्ति मिलेगी,
वह तुम्हारा परम गुरु है।

सुमेरु और सागर

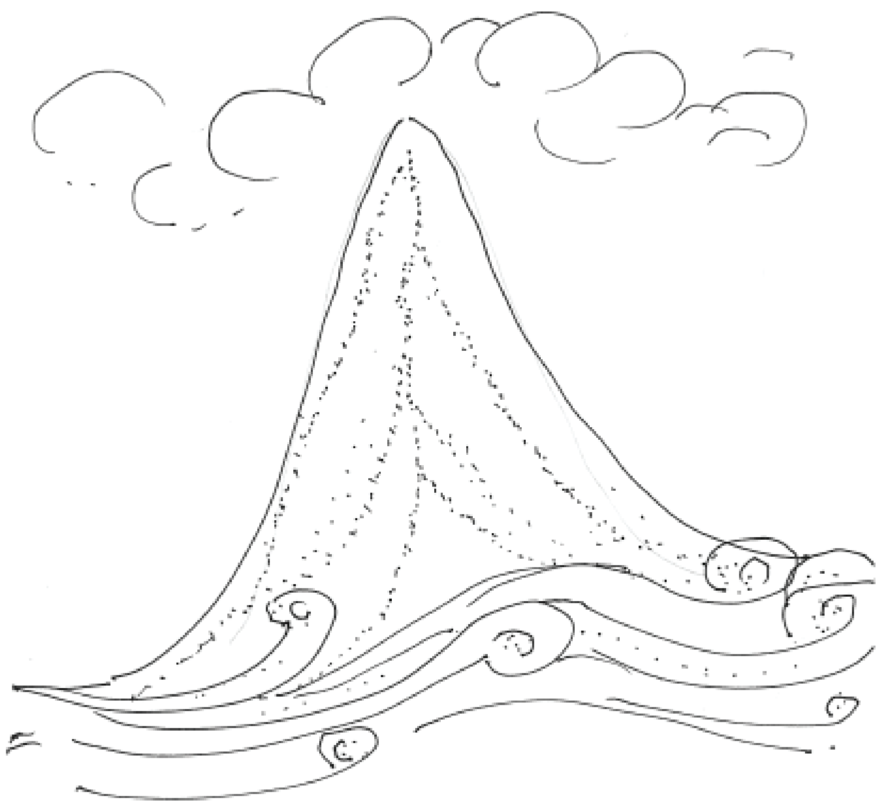

मेघों से वन्दना की
तू सजल ! जल-कण दे-
विनय स्वीकार किया,
उसने अपने शीतल जल बिन्दु बिखेर दिये
पर्वत पर-
एक भी बूंद न रुकी
ढ़लती चली गई
पूछा-
यह ढ़लना कैसा ?

'उसमें अभिमान है
महान गिरि होने का
शीर्श शिखर होने का
अपनी उँचाई का
न प्रेम है- न मुस्कान
केवल है- अहंकार'

अब मैं चली सागर की ओर
उसमें गहराई है-
सब कुछ समा लेने की
तरलता है- प्रेम रस की
भंवर है- गीत गुंजन की
प्रवाह है- समरसता की
जीवन समर्पण किया मैंने - सागर को

मेरा अब वह प्रिय साथी है
भेद नहीं- वह और मैं एक हूँ-
अब मैं बूंद नहीं -
सागर हूँ।

सागर का गुप्त दान

सागर ने अपना जल आकाश को दिया
लेकिन जल देते हुये किसी ने देखा,
वायु - वाष्प बन कर जल ले गई
सागर ने कहा -
किसी से न कहना - यह है मेरा गुप्तदान,

आकाश ने वह जल -
सहस्त्रों बादलों को बाँट दिया
मेघ उमड़कर पृथ्वी पर जल बरसाये
धरती पर नदियाँ बह चलीं
घूमती - इठलाती - सागर से मिलने के लिए
सागर ने जल दिया था
वही जल सहस्त्रो नदियाँ–उसको जल दे रही हैं,

धरती पुत्र मानव खुश था
खेत हरे–भरे हुए
तरू फलों से लदे थे,
और पादप फूलों की सुगन्ध से,
किसी ने जाना इसमें सागर के कण हैं,
सागर ने कहा–
हे मानव !
लहरों पर मेरा नाम 'दानवीर' न लिखना
उनमें उत्ताल तरंगे है
प्रेम के ज्वार–भाटे आते हैं
नाम मिट जायेंगे
पट्‌टिका पर भी 'दानवीर' न लिखना
लहरें सागर तट पर डाल देंगी–

हे मानव !
तुमसे मेरी यही अनुनय है,
लेकिन,
मानव अपना नाम
सुमेरू पर्वत पर लिखवा रहा
पत्थर पर खुदवा रहा,
लेकिन सागर की लहरों पर न लिखवा सका।

ऋतु परिवर्तन

समय गुजरता है
समय गति है
लेकिन समय के साथ सब बदलता है।

हिमालय के प्रांगण में देखा
धवल हिमराशि थी,
वह बसन्त में तिरोहित हो गई।
घाटी कुसुम से सुसज्जित थी,
चारो ओर सुगन्धित बयार।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तपन से आज मरु भूमि है,
पवन तप्त धूल कणों को ले जा रहा था।
वर्षा में - घाटी में
हरी चादर बिछ गई।
पर्वत श्रृंखलाओं से घिरी वही घाटी शीत-तपन-वर्षा सब सह रही-
केवल ऋृतृ, का परिवर्तन था।

जो कली थी, समय बदला
आज फूलों में विहंस रही है

तरू, लताएं सौन्दर्य से विलास करती थी,
आज वही धरती पर
कराह रहीं है।
यह प्रकृति का परिवर्तन है,

कल शिशु था
खिलौने मिले - खेला

यौवन आया-
कमनीय कामिनी अर्धांगिनी हुई,
वृद्धावस्था में आज दण्डी लिए पग से
पथ पर चल रहे
यह तन का परिवर्तन है

कल जिनको मित्र माना
अनुहार किया
उपकार किया
समय बदला
आज वही शस्त्र लिये सामने खड़े
हमसे ही युद्ध करने के लिए आये हैं,
यह मनोभावों का परिवर्तन है।

''चलती चक्की देख
कबीरा दिये रोय
साबित बचा न कोय''
लेकिन यहाँ बिना पिसे
मानव हृदय का परिवर्तन देख
हम दिल से दिये रोय,

कल हस्त बढ़ाकर
याचना करने आते थे
मन्नत पूरी हुई
समय बदला
आज वही - मुझे पीठ दिखाकर
चल रहे -

विश्वास घना था
अपने- पराये का भेद न था,

जो कुछ अपना था-
सब उसका हुआ
समय बदला
जहाँ मैं न हूँ
उस डगर जा रहे,
सड़क वही है-
समय बदला

चलने वाले बदलते गये,
देख रहा हूँ -
समय महान है।

अर्धचन्द्र

शोभा दे रहा,
शिव के भाल पर अर्धचन्द्र
चले नित विकास की डगर
मिटा दे-निशा का अन्धकार
यदि न्यून होता चले,
छाये अमावस्या का अन्धकार,

आज अर्धचन्द्र है
पथ पर आगे बढ़ते-बढ़ते
कल होगी पूर्णिमा,

सागर मे ज्वार-भाटे नृत्य करेंगे
शीतल पूर्ण चन्द्र का पीयूष,
जीवन सागर मे
आनन्द के हिलोरे लेगा,

अब वही अर्धचन्द्र,
मना रहा पूर्णिमा का उत्सव।

हे मानव!
तुम भी हो अर्धचन्द्र
बन कर पूर्णिमा
मनाओ आनन्द उत्सव।

एक शेर तीन बन्दर

पहला बन्दर- आखो में हाथ धरे-बुरा न देखो,

दूसरा बन्दर-कानो में हाथ धरे - बुरा न सुनो

तीसरा बन्दर मुख पर हाथ धरे - बुरा न बोलो,

जंगल का राजा शेर

वह सामने आये - तीनो बन्दर नौ दो ग्यारह,

मन ही शेर है। मन ही देख रहा है-सुन रहा है, कह रहा है।

यह मन भी बन्धन में है।

जिसकी जैसी चित्तवृत्ति वैसा उसका चिन्तन, मनन और कर्म।

दुष्प्रवृत्ति के लोग - कैसे देखते हैं - सुनते हैं -

इसका सुन्दर वर्णन तुलसीदास ने रामचरितमानस में लिखा है-

"जे पर दोष लखहिं सहसाखी।
पर हित घृत जिन्ह के मन माखी।। १/४
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं।
जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं।
बदऊँ खल जस सेष सरोषा।
सहस बदन बरनई पर दोषा"।।

यह अर्न्तप्रवृत्ति है- विचारों की जननी।

देखना - सुनना - बोलना, चलना - करना

उसकी सोच पर निर्भर है,

मन सुन्दर-दृश्य-सुन्दर, मन सुन्दर-विचार सुन्दर,

वेदो में प्रार्थना है -

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।ऋग्वेद १-८६-१

(सर्व ओर से कल्याणकारी विचार आयें)

और तब ही

'भद्रं कर्णेमिः शृणुयाम देवा,

भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजवत्राः। ऋगवेद १-८६-८

विचार सुन्दर हो-
नयन - शुभ देखेंगी, कर्ण-शुभ सुनेगे
वाणी-से शुभ वचन निकलेंगे, कर-शुभ कर्म करेंगे,
पग-सत्य मार्ग पर चलेंगे।
तब -

बन्दरों को न आखों में हाथ,
न कानों में हाथ, न अधरों पर हाथ धरना होगा।

आँखों के रंग

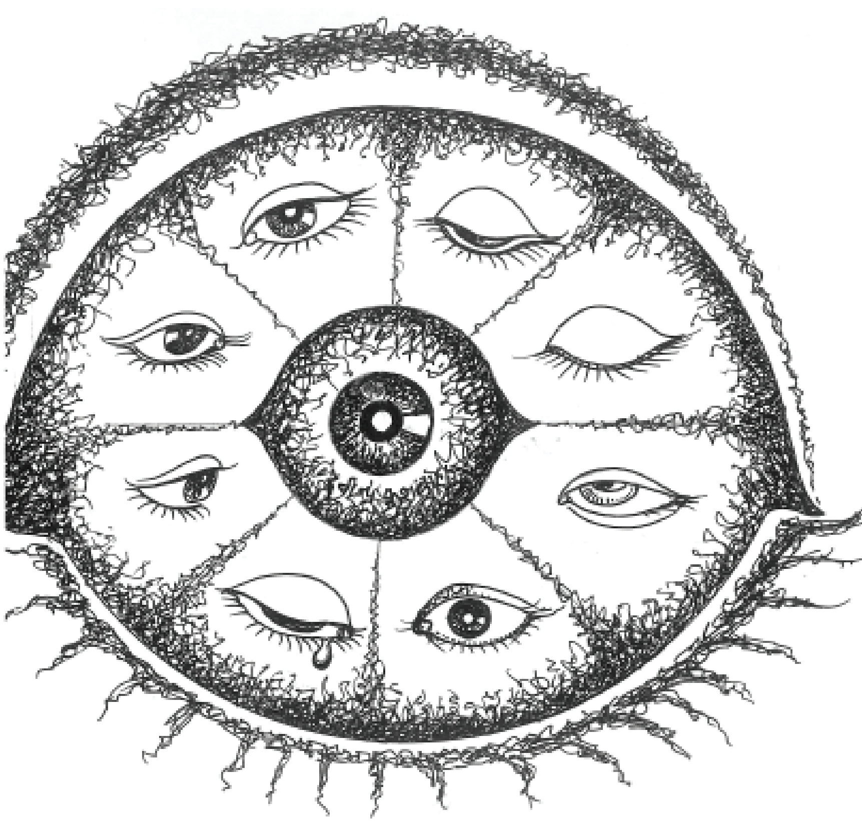

वह चित्रकार था
शरीर में सर्वोत्तम अंग आँखें हैं
उससे वे विश्व को देखती ही नहीं
वरन् रस भी ग्रहण करती हैं
भावों को प्रकट कर बोलती हैं
वे विश्व का द्वार हैं
विश्व - सागर में तिरती नौका हैं

चित्रकार ने सुन्दर आँखें बनाईं
उसमें रंग भरना था, कौन - सा रंग भरें ?
नीला, लाल, हरा, काला, पीला या श्वेत ?

आकाश देखा नीला है -
विश्व वितान था - जिसकी सीमा नहीं
उसमें एकान्त की नीरवता
शान्ति की गुहा है
और धरती पर नीला सागर लहरा रहा
जल में विश्व तिरता
औ' लहरों में मानव की अठखेलियाँ
प्रेम नदियों में मीन-सी तिरती
उसने अपनी तूलिका से
आँखों में नीला रंग भरा

निश्चल झील में मन के भाव छिपाये
गहरे तल में उतरती हैं
नयनों में प्रेम नीर लहराते हैं।

फिर आँखों ने हरित धरती देखी
आखें प्रसन्नता से पुलकित हुईं
धन-धान्य का भण्डार

वैभवता का विस्तार
चित्रकार ने तूलिका उठाई
आँखों में भर दिया – हरा रंग।

चित्रकार ने पतझड़ देखा
टहनी से पर्ण धरती पर गिर रहे
पर्ण पीले हो गये
वे भय से कम्पित, चिन्तित
यह जीवन का अवसान है
अब विकास नहीं पतन है
उनमें राग नहीं, विराग था
मोह नहीं, शोक था
चित्रकार ने सोचा
सबके जीवन में ऐसा भी पल आएगा
उसने आँखों में भर दिया – पीला रंग।

कलाकार की आँखें पुनः आकाश को निहारने लगीं
उसने कल्पना से परे सौन्दर्य को देखा
सुना था आकाश में भी कमल खिलते हैं
लेकिन उसने देखा सप्तरंगी इन्द्रधनुष
अद्भुत विशाल सम्पूर्ण आकाश को व्याप्त किए हुए
यह सप्तरंगी धनुष आकाश में आलोकित

और धरती पर मानव जीवन में रंगों की छटा
मानव में प्रवाहित हो रही
कभी आशाओं की लालिमा और
कभी निराशा का नीला सागर
कभी उल्लास, कभी हताशा
कहीं सुख का आह्लाद
कहीं दुःख का उच्छवास

प्रतिपल-प्रतिदिन रंग बदल रहे
उसने तूलिका से आंखों में इन्द्रधनुषी रंग भर दिये
मानव अपनी ही आंखों से अपना सप्तरंगी जीवन देख ले।

चित्रकार ने फिर आकाश की ओर देखा - रात्रि काली है,
एक उल्का अग्नि से प्रज्जवलित भयंकर लाल
उल्का तीव्र गति से इस लोक की धरती में समा गयी
आज वहाँ विशाल झील है,
आकाश में उल्का
लेकिन मानव-हृदय में अंगारे
कामना पूरित न हुई
उसने मानव को ही भस्मीभूत कर दिया
मानवता शर्मनाक हुई
'द्रौपदी तुमने मेरा अपमान किया'
दुर्योधन की आँखों में क्रोध के लाल अंगारे थे
द्रौपदी का चीरहरण - फिर क्या हुआ?
युद्धस्थल पर वीर योद्धाओं की काया
चिता में धू-धू जल रही थी
दुर्योधन आज भी शमशान पर धधकती ज्वालाओं में
अपनी क्रोधाग्नि को जलता देख रहा
भय से ग्रसित चित्रकार ने
आँखों में भर दिया - लाल रंग
जो भी देखे प्रज्जवलित हो जाये।

चित्रकार ने पुनः आकाश को निहारा
रात्रि हो चुकी थी, घनघोर कालिमा
किधर डगर - किधर खाईं - जान न सका
सूर्योदय पर अंधकार तिरोहित हो गया
देखा सामने काला पाषाण
उसने पूछा- क्या रात्रि अपनी कालिमा दे गई ?

पाषाण ने अपनी आत्मकथा सुनाई -
''नहीं यह सत्य नहीं -
मैनें अपनी आँखों से सब में दोष ही देखा
अब मैं काली हो चुकी हूँ
इन आँखों से अब आगे क्या देखूँ ?''
अब मैनें समझा कृष्ण का रंग काला क्यों था
उनकी मूर्ति काले पाषाण से क्यों बनती
मानव-मानव के दोष ढूंढ़ता
ईश्वर में भी देखता है - दोष,
चित्रकार ने तूलिका उठाई
आँखों में भर दिया - काला रंग।
मानव अब अपना अन्तः दोष
स्वयं देखे, दूसरों का नहीं

रात्रि का अवसान हो चुका था
हिमालय के प्रागंण में था
उसने धवल हिमाच्छादित शिखर देखा
चित्रकार ने अपने कैनवास को निहारा
वह भी था श्वेत निश्चल - शान्त
नयन देखे शान्ति का अनुभव करे

चित्रकार ने अब आँखों में श्वेत रंग भर दिया।
चित्रकार थक गया था

अब मानव स्वयं अपनी आँखों में वह रंग भरे
जो उसकी अपनी आँखों में है
निर्मल उज्जवल, धवल या भावों के विभिन्न रंग
अब उन आंखों में चित्रकार नहीं
मानव रंग भर रहा है।

कटी पतंग

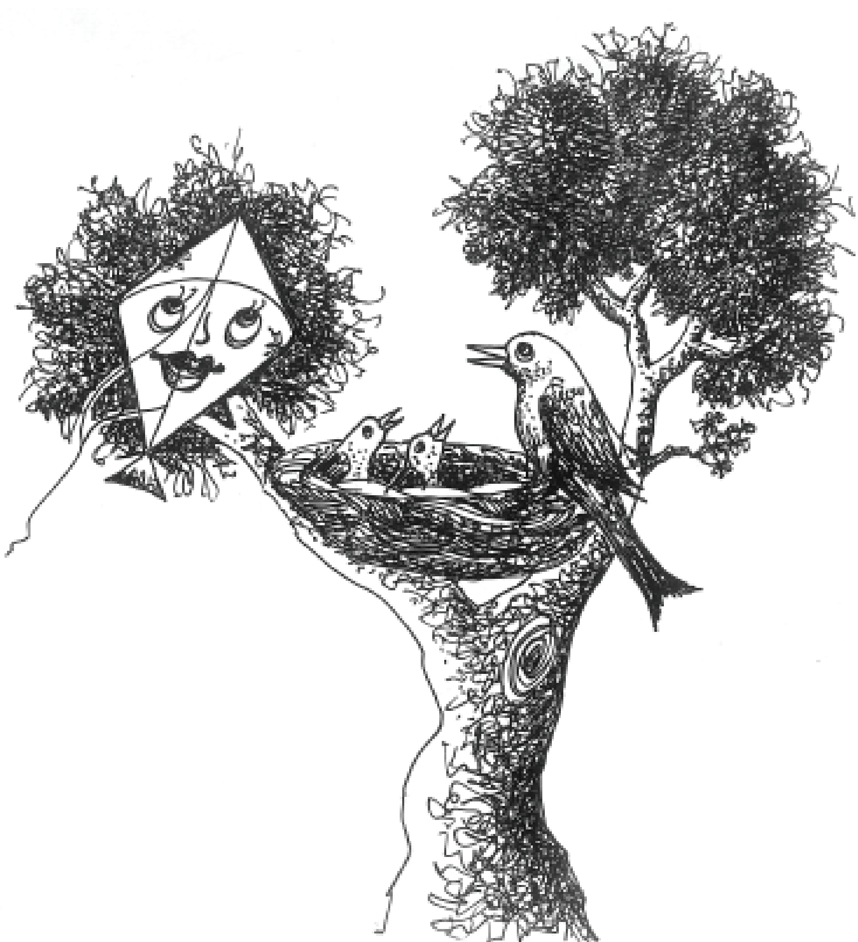

आकाश में लहराती रंग-बिरंगी पतंग
उसमें आकुलता थी चन्दा को स्पर्श करने की
चमकते तारों को अपनी पतंग में जड़ने की
आकाश सागर में मलय के साथ तैरने की
मलय के संग विचरण करने का आनन्द
कभी बयार शीतल स्पर्श करे
कभी उसकी गरमाहट में
प्रियतम की ऊष्णता का अनुभव
लेकिन यह आनन्द था किसी दूसरे के हाथों में,

आकाश में वह आनन्द विभोर नृत्य में मग्न
लेकिन उस नृत्य की डोर, किसी दूसरे की अंगुलियों में
पतंग नियंत्रण से मुक्त, स्वतंत्र होना चाहती
पतंग ने संकल्प लिया, नियंत्रण से मुक्त होना है
स्वतंत्रता में सुख, पराधीनता में नहीं।

एक दिन डोर टूट गई
वह स्वछन्द आकाश में विचरण करने लगी
आकाश में विचरण करते-करते
एक वृक्ष पर अटक गई।

उस वृक्ष पर एक चिड़िया रहती थी,
उसमें उसका घोंसला था
नन्हें चीं-चीं करते बच्चे रहते थे

पतंग और चिड़िया में संवाद हुआ
दोनों ही आकाश में विचरण करते थे
पतंग ने कहा- मैंने आकाश की ऊँचाई को नापा
आनन्द की लहरें उठीं

लेकिन मेरा आनन्द बन्धन की डोर में था
बन्धन टूटा - आज स्वतंत्र हूँ।

चिड़िया ने कहा- तुम्हारी यह स्वतंत्रता नहीं
तुम अभी भी परतंत्र हो
अब तुमको पवन के साथ जाना होगा
जिस दिशा में वह ले चले
उसी दिशा में गमन करना होगा।

पतंग ने कहा- तुम्हारा यह घोसला भी बन्धन है
आकाश में तुम्हारा विचरण स्वच्छन्द नहीं
तुमको इस घोसले में आना होगा।

चिड़िया ने कहा- मेरा यह बन्धन नहीं समर्पण है
मैं आकाश में विहार करूं
कहीं किसी भी तरु में निवास कर सकती
लेकिन अपने चूँ-चूँ करते बच्चों के लिए
दूसरे देश से दाना लाने के लिए जाती
सन्ध्या से पहले आती
यह परतंत्रता नहीं - प्रेम का है बन्धन
प्रेम समर्पण है - परतंत्रता नहीं।

अपूर्ण मूर्ति

प्रभु ने अनगिनत मानव मूर्तियाँ बनायीं
और उसे पृथ्वी पर भेजना आरम्भ किया
और आज भी निरन्तर भेज रहा है।

मानव की आँखें सुन्दर बनायीं
ताकि आँखों से सुन्दरता देख सके
कर्ण - सुनने के लिए, जिह्वा - रसास्वादन के लिये
दीर्घ हस्त - कर्म के लिये, पग - चलने के लिये
जिससे मानव धरती पर विचरण करे
उसके लिए पृथ्वी ने स्थूलता
अग्नि ने ताप, जल ने तरलता
वायु ने गन्ध दी
इन पंच तत्वों से मानव शरीर का जन्म हुआ,

आकाश में व्याप्त वायु
उसके श्वासों में प्रविष्ट कर गई,
मानव मूर्ति जाग उठी।

उसके स्वागत में घर-घर दीप जले
ढोल-नगाड़े बजने लगे
शिशु का जन्म हुआ
उसमें यौवन का उन्माद और प्रौढ़ता भी सन्निहित थी,

लेकिन मानव की मूर्ति अधूरी
वह क्या बनेगा, कैसे बनेगा
ईश्वर ने मानव के विवेक पर ही छोड़ दिया।

मानव ईश्वर की मूर्ति
पाषाण तराश कर बनाता
ईश्वर ने मानव के शरीर का निर्माण

पंचतत्त्व से किया, उसके साथ मन दिया
बुद्धि दी, उसके मन में चिन्तन का प्रवाह
और भावों का भण्डार भरा उसने मानव को -
मन का हथौड़ा
और बुद्धि की छेनी दी
बुद्धि में विवेक की कुंजी थी
जिससे मानव उचित - अनुचित का
स्वयं निर्णय कर सके।

अब मानव अपने हथौड़े एवं छेनी से
अपनी अधूरी मूर्ति को स्वयं तराश कर बनाने लगा,

लोभ की पिपासा शान्त न हुई
कुटिलता से धन बटोरने लगा
लोग कहें डाकू है
वह जहाँ जाये, लोग भय कम्पित होकर
दरवाजा बन्द करने लगे।

किसी ने हिंसा का ताण्डव किया
बच्चों की भी नृशंस हत्या की
लोग कहें- चंगेज खान है
उसमें करुणा और दया नहीं
आकाश में चीख थी-

'त्राहिमाम् त्राहिमाम्।'
इस हत्यारे का अन्त करो,

धरती पर बुद्ध आये
उनमें करुणा थी
घायल हंस के प्राण बचाये
उनके हृदय में जीवों के प्रति करुणा थी
बुद्ध की मूर्ति बन गई।

महावीर स्वामी ने सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाया
तीर्थांकर महावीर की मूर्ति बन गई
श्री राम ने अन्याय के विरुद्ध बाण चलाये
धनुर्धारी राम की मूर्ति बन गई।

बांसुरी से प्रेम के स्वर निकले
जग प्रेममय हो गया
बांसुरी वादक कृष्ण की मूर्ति बन गई।

जन्म पर मानव अपूर्ण था
पूर्णता के लिए जीवन भर
निरन्तर प्रयत्नरत रहा - मन जो कहे वह करे
मन में विकृतियां, - विकृत भाव भरे
तब मूर्ति विकृत बनी।

बुद्धि की छेनी से मानव ने जब विवेक जाग्रत हुआ - मूर्ति सुन्दर बनी
उसके अन्तिम श्वास लेने के बाद लोग
आये उसका अन्तिम दर्शन करने
कि उसने अपनी मूर्ति कैसी बनाई।

पराधीन सुख

मेरे मित्र !
आज मैं पराधीन हूँ
मेरा सुख छिन गया है
क्यों मित्र ?
तुम स्वतन्त्र हो
कौन-सा बन्धन है?

प्रेमिका थी - प्रेम प्रसंग होते रहे
संग था उसका
मधुर-मिलन
सुखद आनन्द की अनुभूति थी
आज अवसाद में
मेरा हृदय प्रेमिका के आधीन हुआ,

पुत्र न था
मन्दिर में देव से मन्नत मांगी
देव ने पुत्र वरदान में दिया
उसे शीर्ष विद्यालयों में पढ़ाया - विदेश भेजा
वहीं विदेशी महिला से उसने विवाह किया
आज अवसाद में - मेरा मन पुत्र के आधीन हुआ,

पड़ोसी आया - मतभेद हुए
कलह विवाद और हिंसा
मेरी चिन्तन की धारा पड़ोसी के आधीन हो गयी,
आह मन!
तुम स्वयं से स्वयं में सुखी न हुए
सम्बधों से, पदार्थों से
परिस्थितियों से मन पराधीन हुआ।

कोई व्यक्ति अपराध के कारण

कारागार में
लेकिन हम स्वयं अपने ही मन को
कारागार में डाल रहे।

मनीषी कह गये-
''पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं'' !

भले ही शरीर अपना
लेकिन अपना मन दूसरे के बन्धन में
तब कहे
'पराधीन मन सपनेहुँ सुख नाहीं।'

मौन

कछुआ नदी किनारे पड़ा था, अस्वस्थ-अशक्त
कुछ बालक उसे ईटों और कंकड़ से मारते,
यह दुर्दशा देखकर हंसों को उस पर दया आयी
दोनों हंसों ने यह योजना बनाई कि कछुए को
किसी सुदूर सुरक्षित स्थान पर ले जाएँ,

उन हंसों ने उस कछुए से कहा- तुमको हम सुरक्षित स्थान पर ले चलते हैं
जहाँ तुमको कोई कष्ट न देगा।

तुमको केवल यह करना है कि
जब हम आकाश मार्ग से जायें
तुम डण्डे को अपने मुख से पकड़े रहना
कछुआ मान गया।

दोनो हंस डंडे को पकड़े हुए
कछुए को आकाश मार्ग से ले जा रहे थे
यह दृश्य देखते हुए बालकों ने चिल्लाकर कहा-
हे मूर्ख कछुए! क्या तुम धरती पर चल कर नहीं जा सकते ?
डण्डे को मुख से पकड़ने का कष्ट क्यों भोग रहे हो ?

कछुए ने उत्तर देने के लिए अपना मुख खोला
वह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा
उसके प्राण पखेरू उड़ चले।
हंसों ने कहा- हे कछुए ! तुम सच में मूर्ख थे।
क्या कटु वचन सहन कर
मौन नहीं रह सकते थे ?

आज मानव भी अपमानजनक
कटु वचन को सहन न कर
वाणी की प्रतिक्रिया से
स्वयं का अहित कर रहा,
उसने मौन रहना न सीखा।

मृत्यु का उत्सव

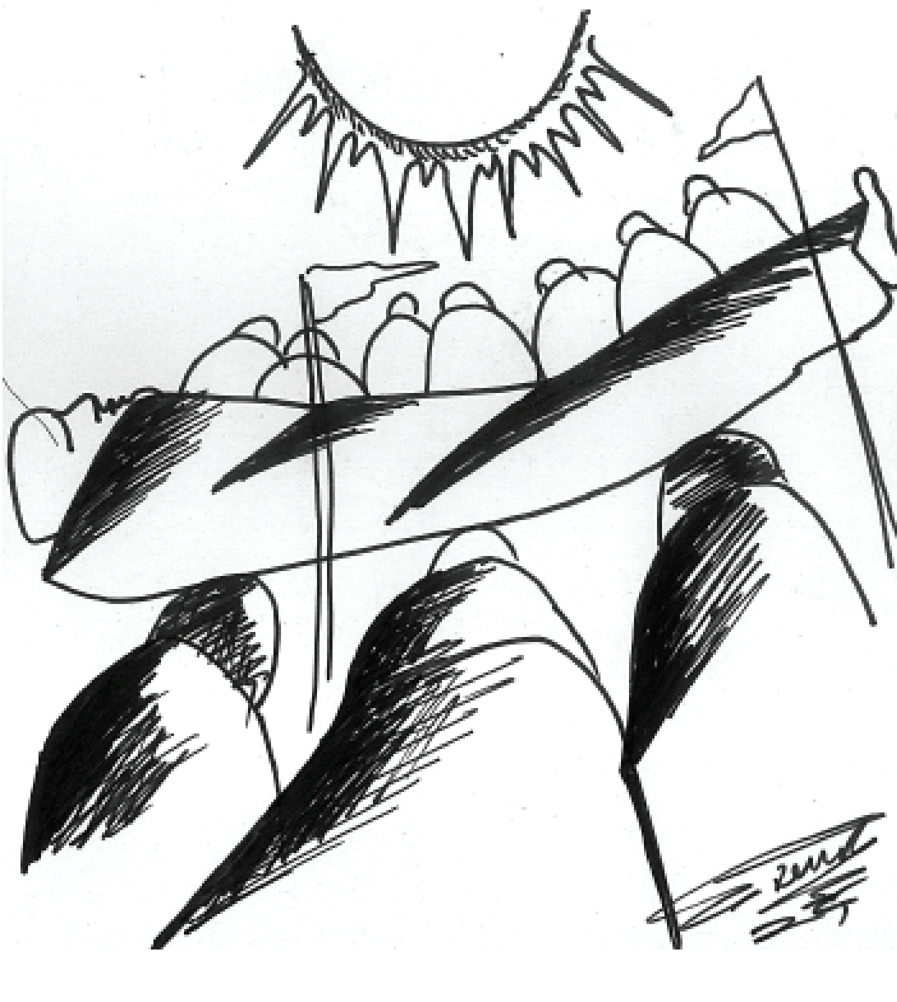

मेरे जन्म पर भवन के सामने नगाड़े बजे
भवन गीतों से गूँज उठा
माता-पिता ने खुशी में कहा- ‘‘शिशु ने जन्म लिया’’।

जन्म का उत्सव हो रहा
लोग बधाई देने के लिए निरन्तर आ रहे
मेरे खेलने के लिये पालने पर
रंग-बिरंगे खिलौने रख दिये गये।

यौवन में पदार्पण किया
गुरुकुल गये
आचार्य ने दीक्षित किया
शिक्षा प्रारम्भ हुई
गुरु ने ज्ञान दिया, विद्या प्राप्त की
मैं विद्वान कहलाने लगा गुरु को प्रणाम कर
संसार पथ पर चल पड़ा।

वैवाहिक बन्धन में बंधकर
पारिवारिक जीवन में प्रवेश किया,
मेरा संसार बढ़ता गया
परिवार से समाज, समाज से देश, फिर विदेश।

हृदय में निर्मल नीर बहता
उसमें अनेक नदियों का समागम हुआ
जिसे रोक न सका
रोकने के लिए कोई हृदय में बांध न था।
अब राग-विराग, घृणा, मान-अपमान
लाभ-हानि, उन्नति-अवनित
कहीं मधु सेवन, कहीं गरल की कड़वाहट की नदियाँ,
जीवन में बहती गईं,

धीरे-धीरे शरीर जीर्ण होने लगा
अब वृद्धावस्था है
आँखों की ज्योति मंद हुई
दाँत टूटने लगे
पाचन-क्रिया मन्द हो गई
कमर झुकी, यष्टि का सहारा लिया
वैद्य के द्वार भटकता रहा
कोई यौवन वापस न ला सका।

मन भी विखण्डित था
हृदय में अनुभव के अनेक भाव भरे थे
हृदय के घावों को मिटा न सका
पुत्र का अल्पायु में निधन
पुत्री का विवाह विच्छेद
अपमान का घूँट
आज भी विष पान करा रही।

भुलाए न भुला सका
जिसका भला किया
उन्होंने विश्वासघात किया
अब ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था
हे जन्मदाता! मुझको
अपने यहाँ शीघ्र बुला ले,
प्रभु ने प्रार्थना सुनी
एक दिन प्राण पखेरू उड़ चले
पार्थिव शरीर चिता में
धू-धू जल रहा था।

मृत्यु उपरांत शोक सभा हुई
मेरी आत्मा ने शोकसभा में

अवतरण किया, मैनें पूछा !
यह शोकसभा किस लिये ?
मेरा शरीर जर्जर था
अब मैं पुर्नजन्म लेकर
पुनः शैशव का आनन्द लूँगा
यौवन के उन्माद में रमण करूँगा
अपमान की कड़ुवाहट न मिटा सका
प्रतिशोध की ज्वाला बुझा न सका
अब मैं सब भूल चुका।

इच्छाएँ अपूरित थीं
मन था अतृप्त - उदास
कड़वे सम्बधों को छोड़
नये सम्बन्धों में मधुरता होगी
आसक्ति में बंधा
अब निर्मुक्त हुआ
अब मैं कोरा कागज हूँ
जो लिखा था, सब मिट गया
जो भुला न सका था - भूल गया
बिना ज्ञान-वैराग्य के मोक्ष प्राप्त किया
बिना जप-तप के मुक्ति मिली।

प्रियजनों! आज आनन्द मनाओ
शोक में आँसू नहीं
आनन्द के गीत गाओ
यहाँ आनन्द सभा होने दो।

कुम्भकार

कुम्भकार ने मृतिका से चिलम बनाई
अग्निकुण्ड- सी
अंगारे में गांजा - भाँग आदि
जो मन भाये, डालते रहे
चिलम से धूम्रपान किया
मन प्रसन्न - पर हृदय ज्वलित,

दूसरी ओर कुम्भ शीतल जल पिलाकर
प्यास मिटाये, हृदय शीतल करे,

चिलम चीख उठी
कुम्भकार तुमने यह क्या अन्याय किया ?
मुझको तापदायक बनाया
कुम्भ को शीतलता दायक
हे कुम्भकार ! मेरा क्या दोष था ?

कुम्भकार बोला-
हे चिलम ! तुम मेरी कृति नहीं
मृतिका और चलती चकिया मेरी थी
बुद्धि के हस्त तुम्हारे थे
निर्णय उसने लिया
दूसरा हस्त निज स्वभाव का
मृतिका ने वैसा ही रूप धारण किया
मेरी तो केवल मही की मृतिका थी,

जल नदियों का था
चलती चकिया, तुम्हारे कर्म की थी।
हे चिलम ! तुम ही
अपने स्वरूप की कृतिकार हो।
हस्त भले ही मेरे
बुद्धि तुम्हारी, हे मृतिका !
अब कुम्भ बन
अन्तः शीतल जल
सबके प्राणों को
शीतल करती चलो।

ब्रह्मपुत्र

ब्रह्मा ने सृष्टि रची
विशाल सागर, ऊँचे पर्वत, गरजती नदियाँ,
और धरती कहीं हरित, कहीं मरुस्थल,
कहीं पादप, कहीं आकाश छूते वृक्ष,

धरती पर पशु-पक्षी और जल में तैरती मछलियाँ,
कहीं कछुआ, कहीं मकरादि,

यहीं नहीं धरती पर मानव को भेजा
और निरन्तर भेज रहा है।

सागर पर उत्ताल तरंगे उठने लगीं
धरती पर भूकम्प आया
ज्वालामुखी फूटी
गर्म लावा बिखर गया
आकाश लाल हो गया
वायु के वेग से
तूफान आया, धरती कांप उठी।

सृष्टिकर्ता यह विकृति देख
धरती पर उतर आये
प्रकृति की विकृति मिटाने को।

अपने प्रिय पुत्रों की भीड़ देखी
आपस में कलह कर रहे थे
ब्रह्मा ने पूछा-
कलह का कारण क्या है ?

हे ब्रह्मा !
हम सब आपके पुत्र हैं

आपने सबको धरती पर भेजा
लेकिन मानव ने मानव को विभाजित कर दिया।
शूद्र ने कहा- मैं सभी की सेवा करता हूँ
सेवा ही मेरा धर्म है
लेकिन सबने मुझको अछूत बना दिया
देव मन्दिर में मेरा प्रेवश निषिद्ध कर दिया
मुझको समाज में निकृष्ट श्रेणी में रखा गया।

वैश्य ने कहा- मैं लक्ष्मी पूजक हूँ
व्यापार से धन अर्जित करता हूँ
समाज को मैं ही धन एवं वस्तु उपलब्ध कराता हूँ
लेकिन फिर भी समाज मुझको
धन अपहरण करने वाला समझते है
हेय कृष्टि से देखते हैं
वर्गीकरण में तृतीय श्रेणी में रख दिया।

क्षत्रिय ने कहा- मैंने अस्त्र-शस्त्र धारण किया
सबकी रक्षा का भार मेरे ऊपर
राज्य का शासन करना मेरा धर्म
समाज ने मुझको राजा बनाया
लेकिन हर कार्य एंव निर्णय के लिए
ब्राह्मण की अनुमति लेनी पड़ती है
मुझे विवेकहीन समझा जाता है।

ब्राह्मण ने कहा- मैनें समाज को ज्ञान दिया
ज्ञान- दीप जलाकर पथ प्रदर्शित किया
मेरे ज्ञान से ही संसार में धर्म एंव विज्ञान हैं
लेकिन मैं निर्धन हूँ
मजबूरी में भिक्षाटन करना पड़ता है,

सबको सुनकर ब्रह्मा के कान में पीड़ा होने लगी
मैं सृष्टिकर्ता हूँ
सबमें मेरा ही रक्त बह रहा
सबको उपदेश दिया-

“तुम सब ब्रह्मपुत्र हो मेरे ही अंग हो
धरती पर हमने सबको भेजा है
मन में संकल्प किया था-
“एकोऽहम् बहुस्यामि।”
नाम-वर्ण मैनें नहीं दिए
हे मानव! तुमने ही किए हैं विभेद”
कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये।

मानव ने ब्रम्हा की आज्ञा का पालन नहीं किया
और आज भी कलह हो रहा
विधाता ने सबको तन दिया
मन भी दिया
लेकिन मन में पावनता न दी,

मानव मन को स्वतन्त्र छोड़ दिया
धरती की विकृति से
ज्वालामुखी धधक रही है
लेकिन मानव मन की विकृति से
वेदना में मानवता कराह रही है।
भले ही सब मानव ब्रह्मपुत्र हैं।

ईश्वर की यात्रा

ब्रह्माण्ड के मालिक ईश्वर ने
अपने सारथी गरुड़ के वाहन से
अनेक ग्रह मंडलों की यात्रा की
जब पृथ्वी मंडल की यात्रा कर रहे थे
तभी उन्होनें पृथ्वी पर हो रहे
कोलाहल की ध्वनि सुनी,
अपने सारथी गरुड़ से पूछा-
यह कोलाहल क्या है ?

प्रभु ! पृथ्वी पर आपके नाम, रूप
पूजा स्थल और पूजा पद्धति पर
कोलाहल हो रहा
आप स्वयं ही देख लें, सुन लें।

भगवान ने कहा- तथास्तु!
और वे अपने वाहन गरुड़ से
पृथ्वी की धरा पर उतरे
देखा कुछ मुनिजन यज्ञ कर रहे थे
यज्ञ कुण्ड में आहुति दे रहे थे।

मंत्रोच्चारण हो रहा था
वहाँ न ईश्वर की मूर्ति
न किसी देवता की मूर्ति
स्थान भी निश्चित नहीं
यज्ञ के लिये जो स्थान निश्चित किया
वहीं यज्ञ कुण्ड बना लिया।

गरुड़ ने पूछा- हे ईश्वर यहाँ आपकी कोई मूर्ति नहीं ?
ईश्वर ने कहा- मैं सर्वव्यापक हूँ
सभी स्थान में हूँ, निराकार हूँ
मेरी मूर्ति की कोई आवश्यकता नहीं

यज्ञ में जो आहुति दे रहे हैं
वे मुझको ही दे रहे हैं
यह वैदिक यज्ञोपासना है।

प्रभु गरुड़यान से दूसरे स्थान पर पहुँचे
वहाँ लोग अग्नि की पूजा कर रहे थे
ईश्वर ने गरुड़ ने पूछा-
यहाँ मनुष्य किसकी पूजा कर रहे है ?
गरुड़ बोले- प्रभु! आपकी ही पूजा हो रही है
आप अग्नि स्वरूप हैं
प्रकाश स्वरूप हैं
मेधा में ज्ञानाग्नि हैं
आत्मा में जाल्वल्य प्रकाशमान हैं
कर्मों में यज्ञाग्नि है
अग्नि परम पावक है
सोने को तपाकर स्वर्ण बनाती
कलुषता को भस्मीभूत करती
पारसी धर्म वाले अग्नि द्वारा
आप की उपासना कर रहे हैं।

ईश्वर ने कहा- मैं आकाश, जल, वायु, पृथ्वी
और अग्नि में समान रूप से विद्यमान हूँ
मनुष्य किसी का भी आधार लेकर
मेरी उपासना कर सकता है।

ईश्वर ने पुनः यात्रा प्रारम्भ की
आकाश में शंखनाद की ध्वनि विस्तारित हो रही थी
घंटे - नगाड़े बज रहे थे
गरुड़यान रुका, गरुड़ ने कहा-
हे प्रभु यहाँ आपका मन्दिर है
आप शंख, चक्र, गदाधारी हैं

चतुर्भुज विष्णु स्वरूप में आपकी पूजा हो रही
मन्दिर के गर्भगृह में आपको विराजमान किया गया है।
ईश्वर ने कहा- गरुड़!
मैं निराकार हूँ, सर्वव्यापक हूँ
मेरे सहस्त्रों पद हैं, मेरा सर्वत्र गमन है
अपने सहस्त्रों नयन से सबको देख रहा हूँ
मुझको कोई स्थूल नेत्र से नहीं देख सकता
मैं अव्यक्त सबको देख रहा हूँ,

प्रभु को धरती पर अवतरित देख कर
समस्त भक्तगण आह्लाद से खड़े हो गये
और उनकी वन्दना करने लगे-
हे प्रभु! आप निराकार हैं
आपका आकार कैसे बनाते
आप असीम हैं, मूर्ति में सीमित कैसे करते ?
आप चौतन्य स्वरूप हैं
स्थूल मृतिका में आपका स्वरूप कैसे बनाते ?

हम भक्तगणों के नयन
आपको मानव स्वरूप में देखना चाहते हैं
कर- पाद पूजन के इच्छुक हैं
वाणी आपके सम्मुख
वन्दना के गीत गाना चाहती है
आपके वरदहस्त हमारे मस्तक पर हों
बाहु आलिंगन कर आप हमें हृदय से लगाएं
प्रभु ने भक्तगणों से मुस्कुरा कर कहा- तथास्तु!

गरुड़यान आगे चला
प्रभु ने अनेक मन्दिरों को देख कर कहा- हे गरुड़!
यहाँ तो अनेक मन्दिर, भिन्न-भिन्न देवता
कहीं महादेव, कही गणेश, कहीं देवी मन्दिर

गरुड़ ने कहा- हे प्रभु! आप ही की पूजा है
जैसी जिसकी भावना, उसने वैसी मूर्ति बनाई
सभी देवी-देवताओं में आप ही प्रविष्ट हैं
शक्ति आपकी ही है
चाहे मनुष्य आपका किसी भी स्वरूप में दर्शन करे।

कुछ आगे चलकर यान रुक गया
गरुड़ ने कहा- यह गिरजाघर है
यहाँ यीशु मसीह की प्रतिमा है
यहाँ आपकी मूर्ति नहीं ?

ईश्वर ने कहा- मैं निराकार हूँ यीशू मेरे ही पुत्र हैं
मेरे ही उपासक हैं
मानव को प्रेम का संदेश दे रहे हैं।

आगे एक अन्य गिरजाघर था
ईश्वर ने वहाँ प्रवेश किया

वहाँ न यीशु की मूर्ति न फोटो,
गरुड़ ने कहा- प्रभु!
आपके कुछ भक्तों ने कहा कि
यहाँ केवल आपको रहना चाहिए
भक्तों को प्रार्थना केवल आपकी ही करनी है
ईश्वर ने कहा- मैं सर्वव्यापक हूँ
कही भी कोई प्रार्थना करे, मैं उसे स्वीकार करता हूँ।

कुछ आगे चलकर यान रुका
ईश्वर ने पूछा- गरुड़! यहाँ क्या है ?
गरुड़ ने कहा- यह बौद्ध मन्दिर है
यहाँ बुद्ध की प्रतिमा है
उनके भक्तों ने आपकी मूर्ति न बनाई

वरन् बुद्ध की प्रतिमा बनाकर
भक्त ध्यान-साधना करते हैं।
ईश्वर ने कहा- बुद्ध मेरा ही स्वरूप हैं
मेरे शून्य स्वरूप में ध्यानावस्थित होकर
वे विलीन हो रहे हैं।
वायु को मुठ्ठी मे नहीं बांधा जा सकता
आकाश का कोई स्वरूप नहीं
वह ध्यान से मेरे में ही प्रवेश हो रहा है
मानव के लिए निर्वाण का संदेश दे रहा है
''अप्प दीपो भव''
स्वयं शाश्वत दीप बनो - का संदेश है।
फिर यान थोड़ी दूर पर रुका,

गरुड़ ने कहा- यहाँ जैन मन्दिर है
लेकिन उसमें आप नहीं, तीर्थंकर विराजमान हैं
ईश्वर बोले- तीर्थंकरों में मैं ही प्रविष्ट हूँ
वे 'अरिहन्त' हैं
स्वयं के अन्तः में जो अरि हैं
उनका विनाश किया
स्फटिक शिला-सा उनका धवल चित्त है
मुख पर शशि की शीतलता
और हृदय में ज्ञान रूपी सूर्य का प्रकाश
गोमुख में गंगा का उद्भव है
यह मूर्तियाँ ज्ञान का स्रोत हैं
अपने अन्तः को उद्वेलित करते अरि का नाश करें
तभी शान्ति मिलेगी
यदि तरु को पुष्पित- पल्लवित देखना है
तो जड़ में पनपते दीमक को मारना होगा।

आगे चलकर यान रुका
गरुड़ ने कहा- प्रभु यह मस्जिद है

यहाँ आपकी प्रार्थना नमन करते
सिजदा करते हैं
सिजदा के लिये मस्जिद को चुना
यहाँ कोई मूर्ति नहीं है।

ईश्वर ने कहा- गरुड़! मैं निराकार, सर्वव्यापक हूँ
ब्रह्माण्ड में सर्वत्र हूँ
कहीं भी कोई सिजदा करे
वन्दना करे, सर्वत्र सुन रहा हूँ
स्थान एवं भवन भक्तों ने अपनी सुविधा के लिये चुने
विश्व ही मन्दिर है,

मैं न स्थान में बंधा हूॅ न भवन में
मैं अमूर्त हूँ, मूर्त भी हूँ
अव्यक्त हूँ, व्यक्त भी हूँ,
धरती पर माटी का कोई रूप और नाम नहीं
मूर्ति उसी माटी से बनी, रूप और नाम रखे गये
स्वर्ण से अलंकरण बने, नाम रूप का अमूर्त में विलय होगा
माटी या पाषाण को मूर्ति का रूप देकर
मानव अपनी भावना को अभिव्यक्त कर रहा
उसमें मेरे अमूर्त रूप को मूर्त रूप में देख रहा
प्रत्येक प्राणी भी मूर्त रूप में व्यक्त है
लेकिन उसमें मैं अमूर्त रूप में हूँ
मूर्त स्वरूप नश्वर है, मैं शाश्वत हूँ !

मन्दिर-मस्जिद गिरजाघर के नाम पर धर्मयुद्ध क्यों?
गरुड़ बोले- हे प्रभु!
धरती पर आपने सबको भेजा
सब आपके पुत्र हैं
उनसे ही प्रश्न का उत्तर ढूंढने जा रहा हूँ।

मन मन्दिर

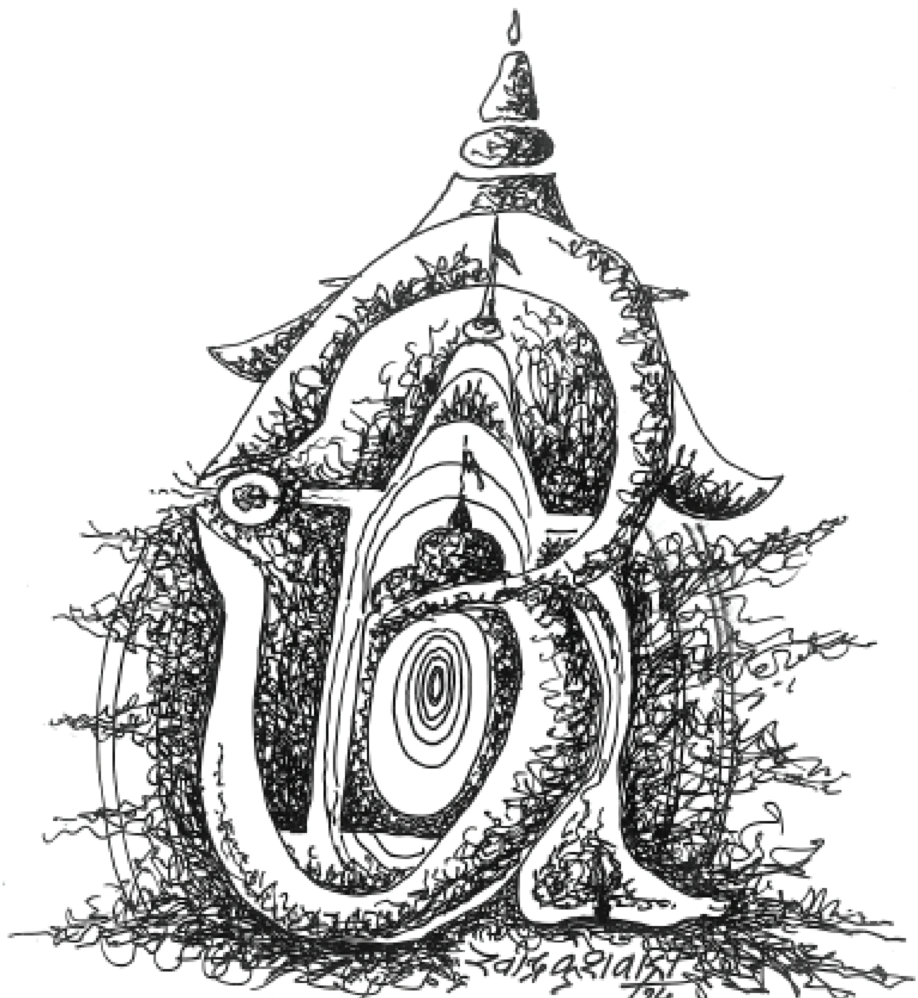

हे प्रभु! निर्झर के झरने में
तुम्हारा निर्मल संगीत
सरिता में लहरें
तुम्हारे लिए नृत्य करें
उषा आरती उतारे
शशि सोम रस से
पद प्रक्षालन करे
उपवन चरणों में पुष्प बिखेरे,

प्राणी - वायु से भले ही श्वास ले
लेकिन तुम्हारी चेतना से
जीवन - ज्योति जले
तुमने नयन दिये लेकिन
वह केवल बाह्य जगत देखे - अन्तर्रात्मा को न देखे।

कर्ण बाह्य ध्वनि सुने
तुम्हारी अन्तर्नाद न सुने
जब जाना तुम उसके प्राणदाता, पिता हो
तुम्हारी खोज में विश्व विचरण करने लगा
धरती खोदी रजत, स्वर्ण सब मिले
प्रभु तुम न मिले।

सागर की गहराई में खोजा
केवल कंकड़ मिले
वायुयान से आकाश में उड़ान लगाई
प्रभु तुम न मिले,
ग्रह-नक्षत्रों में ढूँढ़ा
प्रभु तुम न मिले ,
अन्त में थका हारा, एक शिला पर बैठ गया।

प्रभु, तभी तुमने पुकारा- मेरे प्रिय पुत्र
मेरी चेतना से तुम जाग्रत
अनुभूति के केन्द्र बिन्दु हो,
सुख में आह्लादित होते, दुःख में क्लान्त
चिन्ता की ज्वालाओं में जलने पर दग्ध
लोभ से ग्रसित, मन में कलुषता की धारा बहे
तुम्हारे मन में मेरे लिए कहाँ स्थान ?

तन्द्रा टूटी, देखा-
मन-मन्दिर में तुम आसीन थे
मेरी चेतना जाग्रत हुई
तब मन तुम्हारे चरणों में था
मन में बाह्य जगत था, कलुषता थी,
पाषाण को तराश कर मन्दिर बनाया
अन्दर के पाषाण हृदय को न तराशा।

मन अन्तर्मुखी हुआ - देव दर्शन हुए
निर्मल गंगा की धारा बही
मन तुम्हारे गीत गाने लगा
आज निर्मल मन ही मन्दिर है।

बुद्धं शरणं गच्छामि

वन पथ पर सैकड़ों जन, गीत गाते हुए जा रहे
''बुद्धं शरणं गच्छामि''
उनकी शरण में क्यों जा रहे हैं ?
क्या उनकी शरण में जाने से गूढ़ ज्ञान मिलेगा ?

करुणामयी सुजाता के कदम आगे बढ़ें तो देखा -
महात्मा बुद्ध का शरीर जर्जर हो रहा था,
उन्होंने अन्न-जल का त्याग कर दिया
ज्ञान प्राप्त करने के लिये तपस्या कर रहे
शरीर को कष्ट देना तप
गाल बैठे हुए, कंकाल - सा शरीर, सूखे होंठ
जल के लिए तृषित,

सुजाता व्यथित हुई उसने स्नेह से
तपस्वी बुद्ध को खीर खिलाई
तन-तरु हरित होने लगा
जाना ज्ञान प्राप्त करने के लिए
स्वस्थ शरीर आवश्यक है,

वन विहार करते हुए
महात्मा बुद्ध का अंगुलीमाल से हुआ साक्षात्कार
उसने बुद्ध के शरीर को भी विच्छेदित करना चाहा
बुद्ध ने उससे कहा- क्या तुम
पेड़ की टहनियों को काट सकते हो ?

वह क्रोधाग्नि से कुपित हुआ और तेज कुल्हाड़ी से
वृक्ष के तने को उसने काट दिया ,

बुद्ध का अगला प्रश्न था-
क्या इस तने को पुनः जोड़ सकते हो ?
उत्तर था-''जो कटा वह जोड़ा नहीं जा सकता''।

तब तुमको काटने का अधिकार नहीं ,
बुद्ध ने उसके मन में बहते
विचारों को परिवर्तित किया
अब वह अंगुलीमाल नहीं बुद्ध संघ का सदस्य था।

कर्म - मन का अनुसरण करता
मन की विकृति ही अपराध
मन की साधना ही, साधना - पथ
बोध हुआ-मन की शरण जाओ,
मन से साधना ही नहीं, वह साध्य भी।

बुद्ध ध्यानावस्थित हो गये
नेत्र बन्द किये
बाह्य जगत में अब कुछ देखना नहीं
लेकिन नेत्र बन्द कर अन्तः में क्या देख रहे
आत्म प्रकाश, वह चैतन्य
प्रकाश स्वरूप, शान्ति स्वरूप
आनन्द स्वरूप है
उसके लिए न कोई दीप की
न तेल की, न अग्नि की आवकश्यकता,
माटी का दीप - वह पार्थिव शरीर
उसमें तेल मन है और उसमे प्रकाश स्वयं आत्मा
आत्मदीप हुए, आत्म दर्शन का मूल मंत्र दे गए-
''अप्प दीपो भवः'' (स्वयं दीप बनो) !

महात्मा बुद्ध के दर्शन करने के बाद
वापस जाते हुए लोग गीत गा रहे थे-
'शरीरम् शरणम् गच्छामि'
'मनः शरणम् गच्छामि'
'आत्मम् शरणम् गच्छामि' !

मैं भाग्य लिख रहा हूँ

मधुर भोजन था, जिह्वा में रसना थी
नियन्त्रण न हो सका
रोगों ने आ घेरा, जिह्वा की कलम से
अपने रोगों का भाग्य लिख रहा हूँ।

वाणी की वीणा
मानस-तन्त्र के सप्तक तार
मधुर स्वर- पीयूष गंगा की धारा बहे
जब हृदय में गरलता, वाणी - विष उगले
वाणी से सम्मानित कर - ताज पहनाये
अपमानित कर ताज धूल धूसरित किये
वाणी के शब्दों से बनाये
अभिन्न मित्र और बनाये विभिन्न दुश्मन
वाचा की कलम से, भाग्य लिख रहा हूँ।

किसी के हृदय को घायल कर
दी विषमय जीवन की वेदना
या निःस्वार्थ परोपकार कर
बंजर हृदय में सुधा-रस की दरिया बहाई
अन्तर्भावों की कलम से
अपने सुख-दुःख का भाग्य लिख रहा हूँ।

अपने करों से कंटक बीज बोये
आज निहार रहे हैं यह भयानक कंटक बन
न रसमय फल, न महकते फूल
जीवन के हैं ये कंटक -

आम्र बीज बोये
आम्र मंजरी उपवन में सुगन्ध लहलहाये
फल मुधर, रसमय और मनमोहक

निर्बल को भी सबल करें
कर्म की कलम से, भाग्य लिख रहा हूँ।

हे परमेश्वर !
तुमने मुझे पग दिये
किस मार्ग पर चलें
यह निर्णय हमारे विवेक पर छोड़ दिया
मार्ग दो थे- प्रेय और श्रेय
इन्द्रियों के वश - प्रेय मार्ग को चुना
वह ले चला अधोगति की ओर -
मन में कुंठा थी
कुंठा मिटी, चले बैकुंठ की ओर
वह सत्पथ रहा तपमय
मंजिल मिली
आनन्द धाम को जाने के लिए
अपने पग की कलम से
भाग्य लिख रहा हूँ।

आशीर्वाद

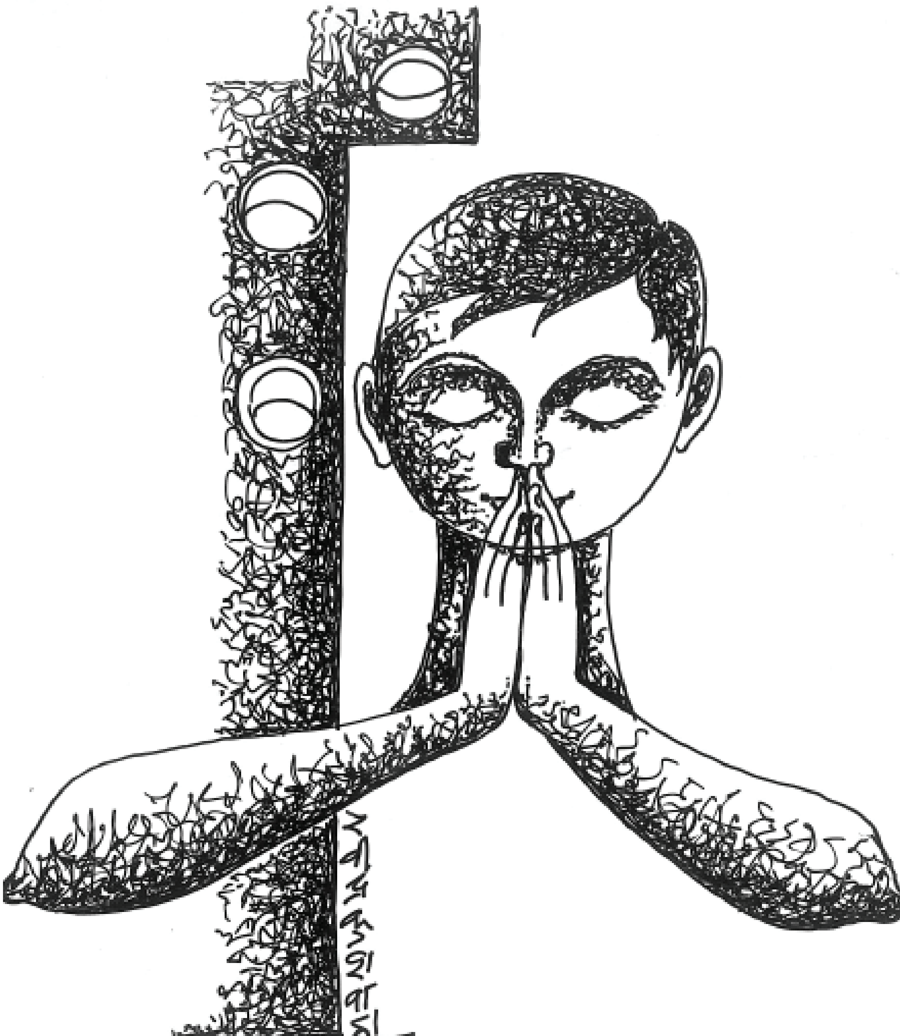

कल इस बालक की मृत्यु का दिन है
ज्योतिषी ने माँ को बताया
माँ बेहोश हो गई
होश आने पर पूछा- क्या कोई उपाय है ?

यह तो कोई महात्मा ही बताएगा
वह गुरुदेव की शरण में गई
दण्डवत् प्रणाम किया, उपाय पूछा
गुरुदेव ने रहस्य का उद्घाटन किया
केवल एक उपाय- आशीर्वाद प्राप्त करना
आशीर्वाद अमृत सरोवर है
जिसने उस पीयूष का पान किया
वह अमर हुआ।

आशीर्वाद वह सजल मेघ,
जो जीवन धरती को सिंचित करता,
आशीर्वाद चन्द्रिका के कलश का सोम रस
हृदय में शक्ति का संचार करता,

जाकर बालक से कह दो
चौराहे पर खड़े होकर प्रत्येक राहगीर को प्रणाम करे
प्रणाम आशीर्वाद लेने का सरल-सुलभ साधन,

दूसरे दिन प्रातःकाल बालक चौराहे पर खड़ा हुआ
प्रत्येक राहगीर को उसने हृदय से प्रणाम किया
जिनको प्रणाम किया
आशीर्वाद के शब्द स्वतः उनके अन्तः से निकले
''आयुष्मान भव'' , शतायु हो ,
''बालक जुग-जुग जियो'' ,

दिन टला सूर्यास्त होने लगा
संध्या को यमराज आये
बालक को यमपुरी ले जाने के लिये
उन्होंने बालक के कर्म-पटल को पढ़ा
हजारों जनों ने उसको
शतायु होने का आशीर्वाद दिया था,
वह अब शतायु हो चुका,
यमराज बालक को शतायु होने का
आशीर्वाद देते हुए
यमपुरी वापस चले गये।

निःस्वार्थ भाव से
जिसको भी प्रणाम करते
वह द्रवित होकर
जीवन के मंगल की
कामना करते हुए आशीर्वाद देता।

बिना तप किये - वरदान मिलता
बिना धन दिए - धनवान बनता
उसे मिले मंगल धाम
मिले जीवन वरदान।

प्रभु दर्शन

प्रभु! मैं आपके स्वरूप का
दर्शन करना चाहता हूँ
प्रमु बोले- 'मैं अशरीरी हूँ। '
'आकार नहीं, निराकार हूँ।'
सत् , रज, तम के गुणों
से परे निर्गुण हूँ।
मन, बुद्धि, चित, अहंकार
से परे निर्विकार हूँ।
न सुखी, न दुःखी
सच्चिदानन्द हूँ। न कर्ता, न भोक्ता
साक्षी स्वरूप हूँ।

मुझको बाहर कहाँ ढूँढ रहे
आत्मरूप में तुम में प्रविष्ट हूँ।

लेकिन नयनों ने कहा
मेरे नयन तुम्हारे दर्शन को प्यासे हैं,

प्रभु बोले- हे मानव !
देखो! धरती पर सभी
प्राणी मेरे ही रूप हैं
आत्मरूप से उनमें प्रविष्ट हूँ,
उसके बाह्य आकार को नहीं
उसके अन्तः में मेरे रूप को देखो,

हे प्रभु! तुम्हारी सुरीली
वंशी की ध्वनि मुख से
कल-कल निनाद करती वाणी
सुनने को कर्ण आतुर हैं।

‘हे मानव!
मैं सत्यस्वरूप हूँ।
मेरी सत्य की वाणी
गुंजायमान है ,
हाँ! कोई सुन ले
लेकिन सुनता है कौन?

सब मुझको मानते हैं
लेकिन मेरे वचनों को मानता है कौन?’
मैं निरुत्तर था।

मानव का मूल्य

परिवार, सगे सम्बधी और मित्रगण
सब देख रहे थे
चिता जली, निःश्वास विशाल काया
धू-धू करती ज्वालाओं से लिपट गई
अब यह काया भस्म है
न सुन्दर न कुरूप, न धनी न निर्धनी
न राजा न रंक, केवल है - भस्म।

मही ने कहा- इस पर मेरा अधिकार है
यह भस्म मुझे समर्पित करो
मुझसे ही इसे काया मिली थी।

वायु ने कहा- जीवन में प्रतिपल मुझसे श्वासें लीं
आज निःश्वास है
इसकी श्वास अब मुझमें समाहित है।

अग्नि ने कहा- अधिकार मेरा है
इसके शरीर में मेरी ही जठराग्नि थी
मैं माँ हूँ, भोजन मैं ही खिलाती थी।

जल मुखर हुआ- इसकी नस-नस में
मेरी ही जलधारा थी
भस्म मेरी लहरों में लहरा दो।
आकाश को सहन न हो सका
और कहा- जीवन में उसका आकार था
आज निराकार होकर
मुझ में ही समा गया
जीवन में जो उसे मिला - उसमें शान्ति न थी
अब उसे शान्ति चाहिए
वह मेरी नीरवता में मिलेगी।

सबकी सुनकर
महादेव प्रकट हुए और कहा- यह भस्म
मानव देख सके
जीवन का अन्तिम सत्य क्या है
शरीर पर भस्म - मेरा श्रृंगार है।

आज मन्दिरों में
भक्तगण मस्तक पर भस्म लगाते
कोई भी द्रष्टा जान सके
मानव का मूल्य क्या है।

कालजयी

मैं महाकाल हूँ ,

सृष्टि के जन्म से
आज तक समत्व योग का पालन कर रहा,
धर्मात्मा हो या दुरात्मा
निर्मल हो या कुटिल
धनी हो या निर्धनी

सम्राट हो या - प्रजा
सबको काल कवलित किया
धरती पर जो चल रहे थे,
आज वे चले गये
जहाँ भवन पर पते लिखे थे
सब मिट गये
कोई भी कालजयी न हुआ।

बुद्ध प्रकट हुए - कहा
हे महाकाल! मैं कालजयी हूँ ,
जीवन में ही मरना सीखा
निर्वाण प्राप्त किया
मेरे लिये न जन्म है - न मृत्यु ,
जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त
मैं कालजयी हूँ।

भगवान महावीर ने पुकारा-
हे महाकाल !
मैंने मृत्यु का उत्सव सिखाया
शरीर की हिंसा नहीं
अहिंसा का पाठ पढ़ाया
आज भी पढ़ा रहा हूँ
मैं कालजयी हूँ।

हे महाकाल !
तुमने ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाया
सूली पर चढ़े हुए भी
मानवता का उपदेश दे रहे
मानव आज भी सुन रहा
तुम्हारी सूली ने उसे मौन न किया
वह कालजयी है।

राम ने अन्याय मिटाने,
धनुष धारण किया
रावण का वध किया
वध होने पर भी रावण जीवित
सीता का हरण हो रहा
कुबेर का धन अपहरण हो रहा
विभीषण प्रताड़ित हो रहा
राम आज भी अन्तरात्मा में हैं
जिसने विनम्रता से प्रार्थना की
राम-रावण का हनन कर रहे
राम कालजयी हैं।

कल कुरुक्षेत्र में
महाभारत हुआ
हे महाकाल !
आज घर-घर में महाभारत
कृष्ण कहीं गये नहीं
जीवन के युद्ध क्षेत्र में
आज अन्तरात्मा में
गीता का उपदेश दे रहे
अन्तःकरण में उसे सुनना
कृष्ण कालजयी हैं।

हे महाकाल !
तुमने मानव शरीर को
पंचत्तव में विलीन किया
लेकिन जिसने भी धरती पर आकार लिया
प्राण जाने पर भी उसने मानस में
राग-द्वेष लिये - पुर्नजन्म लिया
तुम पुर्नजन्म रोक न सके
पुनः धरती पर आया
वह भी कालजयी है।

मैं ईश्वर पुत्र हूँ,
यह किसने कहा ?
आवाज आई-
धरती पर जिसने भी जन्म लिया
सब हैं - ईश्वर पुत्र,
यह कैसे हो सकता ?

ईश्वर सर्वशक्तिमान, हम दुर्बल
वह ऐश्वर्यवान, हम निर्धन
वह असीमित, हम सीमित
वह वैकुण्ठ धाम में
हम लोक बन्धन में।

तब ईश्वर ने पुकारा- हे मानव!
मैं प्रजापति हूँ
मैंने ही सबको जन्म दिया
लेकिन मानव को बन्धक नहीं बनाया
उसको स्वतंत्रता दी
मन दिया, वह है - स्वतन्त्र,
कुछ भी सोचने को,

बुद्धि दी - स्वयं निर्णय करे
उचित क्या, अनुचित क्या
हृदय में भाव भरे वह प्रेम से अभिभूत हो
या घृणा का विष पिये -

मानव स्वयं का कलाकार
चित्र बनाये, जो भी रंग भरे
कवि है, प्रेम के गीत गाये या युद्ध के गीत,
ईसा मसीह ने कहा- मैं ईश्वर पुत्र हूँ
जिन्होंने उनको सूली पर चढ़वाने का प्रयास किया
उनके लिए ईश्वर से प्रार्थना की-
हे ईश्वर ! इनको क्षमा कर देना
वह नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं,

ईश्वर को फिर भी धन्यवाद दिया
मानव ने अपने हाथों को देखा
यह न जाना कि उसने
उपकार किया या अपकार
पग से निरंतर चले, न सोचा
डगर सत्य की थी या असत्य की।

ईश्वर सबमें अन्तर्साक्षी था
देख रहा था, जिस मानव को स्वतन्त्रता दी,
वह स्वयं परतन्त्रता में बँधा
उसे शक्तिवान बनाया, स्वयं निर्बल बना
उसे धनवान बनाया, स्वयं निर्धन बना

सितार के सप्तम तार, मन ने ढील दे दी
संगीत के स्वर गूँजते कैसे ?

तृष्णा

सागर के तट के निकट
रामदीन का घर था
लहरें तट के समीप कभी-कभी
सीप छोड़ देती थीं, वह उन्हें बीन लेता
कभी-कभी उन सीपों में
मोती भी मिल जाते,

आज सुबह रामदीन ने
निश्चय किया कि सीप बटोरेंगे
जब तक सीपों में मोती न मिल जाए

लहरों का छलावा रहा
सीप लहरों के साथ आगे बढ़ती गईं,
रामदीन वृद्ध था
लहरों के साथ दौड़ता गया।

संध्या आई
एक नाविक ने कहा कि अंधेरा हो रहा है
मेरी नाव पर बैठो
तुम्हारे घर पहुँचा देता हूँ
लेकिन उसने न माना
उसको अभी तक सीप नहीं मिले थे,

धुंध प्रकाश था
वह दौड़ता रहा, थक गया
शरीर धरती पर गिरा,
प्राण आकाश में उड़ चले...।

तृष्णा तृप्त न हुई
तारों ने आँसू बहा दिये
सब ने देखा चारों ओर
सीप पर ढ़लकते आंसू
बिखर रहे थे।

माँ की शिक्षा

सुल्ताना डाकू को मृत्यु दण्ड की सजा मिली
आज फांसी होनी है
जेलर ने उससे कहा-
तुम्हारी अन्तिम इच्छा क्या है ?
''मुझे मेरी माँ से मिलवा दो''।

उसकी माँ आई
सुल्ताना ने उसको अपने पास बुलाया
फिर अपने दाँतों से जोर लगाकर
उसके कान काट दिये
जेलर ने पूछा- अन्तिम समय में माँ के साथ
यह जघन्य अपराध क्यों किया ?

उसने प्रकरण बताया-
बचपन में मेरे मकान के बगल में
पड़ोसी के घर मुर्गियाँ थीं
जो अण्डे देती थीं
मैं अण्डे चुराकर माँ को देता रहा
किन्तु माँ ने कभी मना नहीं किया
बाद में मुझे कुछ साथी मिले
जो डकैती करते थे
मैं उनके साथ डकैती करने लगा

और अब डाकू के रूप में
फांसी के फंदे में लटकने जा रहा हूँ
माँ मुझे अण्डों को
चुराने से मना कर देती

तो मैं डाकू न बनता
माँ ने मुझे डाकू बना दिया।

माँ कोख से शिशु को जन्म देती हैं
लेकिन वह संस्कारशाला भी है
वह शिशु को सज्जन बनाए या दुर्जन बनाये
यह माँ की शिक्षा है।

नमन

मानव ईश्वर को नमन करता है क्यों ?
कामनाओं को पूरित करने के लिये ?
दुःख निवारण के लिये ?
अवांछित परिस्थितियों से मुक्ति के लिए ?

मनुष्य में अहंकार है,
वह किसी के सम्मुख
झुक कर नमन नहीं करता

लेकिन -
वह बेबस है, क्रोध के सामने
क्रोध के वेग को जानते हुए भी
रोक नहीं पाता
क्रोध की ज्वाला में जलकर
स्वयं को भस्म करता है।
वह क्रोध के सामने झुकता है

वह बेबस है, लोभ के सामने
मन में लोभ - बुद्धि का हरण
धन-सम्पत्ति और नारी का अपहरण
लोभ के सामने झुकता है।

वह बेबस है, मोह के सामने
प्रेमिका का सुखद मिलन
बन्धु बान्धव का सम्बल
पुत्र-पुत्रियों के मोह में
मूढ़ होने पर विवेक नष्ट करता
वह मोह के सामने झुकता है।

फतिंगा शमा पर फ़िदा है
बेबस है जलने को

वह बेबस है
स्वयं के अहंकार में,
अपने को श्रेष्ठ
दूसरे को निकृष्ट करने के लिये,

हाथियों ने चीटियों को रौंदा
एक दिन खरोंच होने पर
घायल चीटियों ने हाथी को घायल किया
आहत होकर अपने प्राण गंवाये,
अहंकार का मर्दन होने पर
झुकना पड़ता है

वह बेबस है भय से
पद खोने का
धन विनष्ट होने का
राज मुकुट गिरने का
भय के सामने झुकता है।

ईश्वर सत्य है, प्रेम है
करुणा है, सच्चिदानन्द है
इनको आत्मसात् करना
यही नमन है
वन्दन है
आत्म - उद्धार है।

चरण

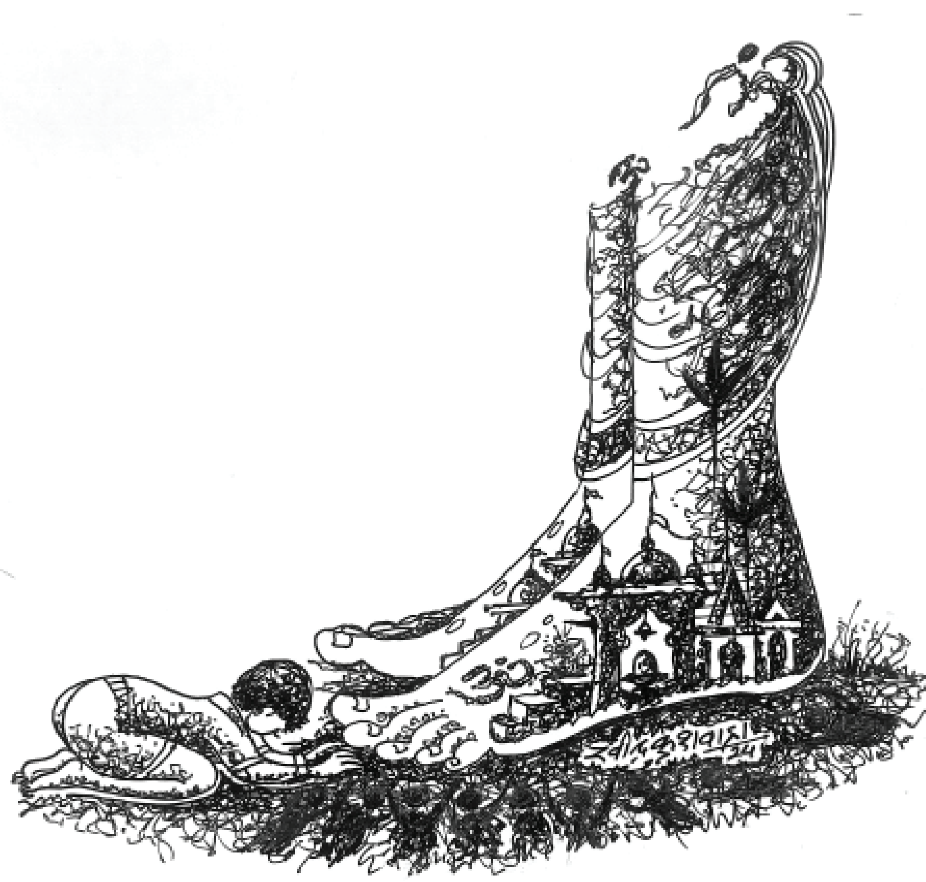

माँ ने जन्म दिया
पालने में झुलाया
फिर धरती पर बैठाया
खड़े होने पर गिरते थे
माँ ने चलना सिखाया
आज हम पग से
विश्व भ्रमण कर रहे
माँ तुम धन्य हो
तुम्हारे चरण पूज्यनीय हैं।

जब मैं शिशु था
पिता ले चले विद्यालय की ओर
भाव भरे थे मेरा पुत्र विद्वान बने
विद्यालय की ओर मेरे चरण चले
विद्वान बना
पिता धन्य हैं
आपके कारण मेरे चरण बढ़े
आपके चरण पूज्यनीय हैं।

अन्धकार था, डगर दिखाई न दे
गुरु प्रकाश दीप लेकर
साथ चल पड़े
अब मेरे चरण मंजिल की ओर
हे गुरुदेव! आप धन्य हैं
आपके कारण मेरे चरण
मंजिल की ओर चले,
आपके चरण वन्दनीय हैं

किस पथ पर चलना है
मन के कहने पर

या विवेक के आदेश पर ?
एक ओर मधुशाला
उसका पान मधुमय लगे
लेकिन अन्त में था गरल,

दूसरी और सत्य का पथ
वह अग्निपथ
लेकिन प्रभु तुम ले चले
वैकुण्ठ धाम, गीत गाया
''असतो मा सद् गमय''
''तमसो मा ज्योर्तिमय गमय।''
जहाँ सन्तों के चरण पड़े
वहाँ तीर्थ बन गये।

चिन्तन करता था
विशाल शरीर में
चरणों की ही क्यों वन्दना करते
चरण ही सद्गति को ले जाती है,
चरण आचरण का आधार हैं।

तभी कहा गया-
''महाजनो येन गतः स पन्थाः''
और मानव स्वयं नमन कर
उन चरणों की वन्दना करने लगा।

सूर्यवंशी

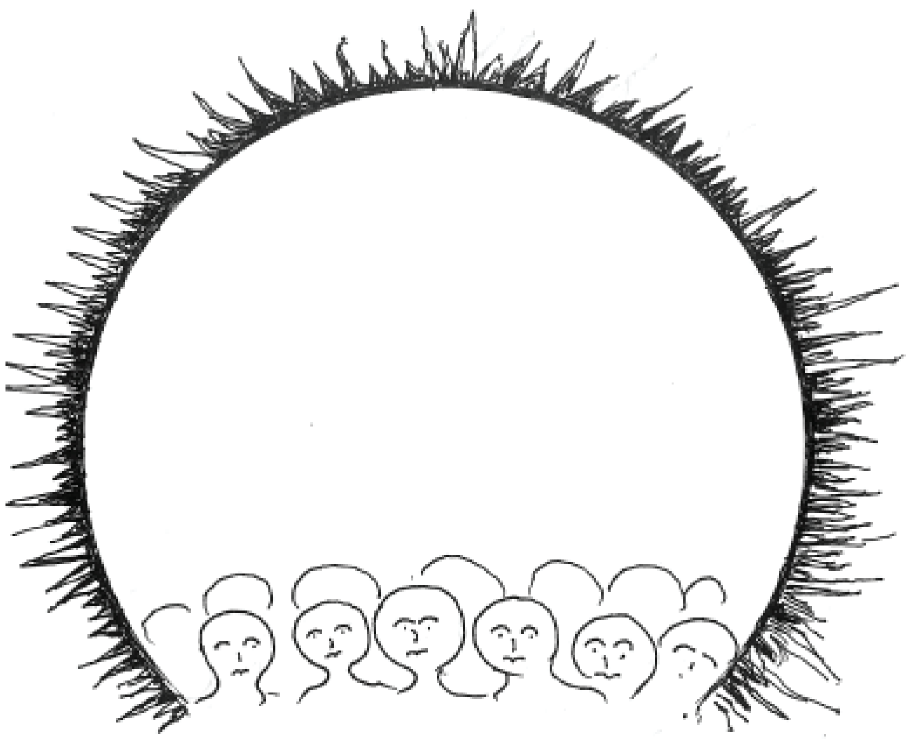

आकाश में सूर्य प्रकाश दे रहा है-
अग्नि में तप-तप कर। अग्नि के अंगारो को अपने में समाये है - अंगारो का भंडार भरे है।

उसने पुत्र को जन्म दिया-नाम रखा- 'पृथ्वी'। जाज्वल्यमान अग्नि का गोला। करोड़ों वर्ष लग गये- इसको शान्त करने में - जल से। सतह
पर सागर उमड़ पड़ा। लेकिन ऊपर की केवल सात मील अन्तः की सतह
शान्त हुई। पृथ्वी के अन्तः में आज भी अग्नि धधक रही है।

पृथ्वी ने जल, अग्नि, वायु और आकाश की सहायता से प्रणियों को
जन्म दिया - लेकिन उसमें अपना अग्नि तत्त्व भी डाल दिया।
उदर में जठराग्नि जली - भूख से प्राणी
तड़पने लगा। आहार लिया।
अग्नि ने उसे परिपाक किया।

औ' हृदय में चैतन्य की अग्नि थी।
अन्तश्चेतना को जाग्रत करने के लिये, न तेल की न बाती की आवश्यकता थी।
केवल मन को बर्हिजगत से अर्न्तजगत की ओर ले चलना था।
किसी बिरले ने जाना - मेधा में अग्नि है।
उसी ने किसी को वैज्ञानिक, किसी को साहित्यकार,
संगीतकार या कलाकार बनाया।
प्रतिभा को जाग्रत करने की ज्योति है।
मानव ने भाल पर दीपशिखा सी तिलक लगाकर या
सूर्य सा बिन्दु बनाकर उस ज्योति को चिन्हित किया।
वेदों ने इस रहस्य को जाना।
ऋगवेद के प्रथम सूक्त में कहा -

'अग्निमीले पुरोहितम्... '

(हित करने वाली अग्नि मुझे आगे ले चल)

मानव पुकार रहा है -

हे अग्नि मेरी मेधा को प्रकाशित करो - मैं भी सूर्यवंशी हूँ।
मैं सूर्य का अंश हूँ, मुझमें भी अग्नि है।

स्वयं पर निर्णय

अरूणोदय हुआ। तन्द्रा टूटी। विहंग कलरव करते आकाश में गमन कर रहे हैं,
रात्रि में शयन करने पर मेरी चिन्तन धारा प्रसुप्त थी,
जाग्रत होने पर उसका पुनः प्रवाह होने लगा,
मन चंचलित हुआ। इन्द्रियाँ कार्य-कलाप में व्यस्त हो गईं।

अब सूर्यास्त हो रहा है। गोधूलि है। पक्षी नीड़ में जा रहे हैं,
रात्रि में पुनः शयन करना होगा।
मानव के देहावसान पर महाकाल निर्णय करे कि उसने
जीवन में क्या कर्म किये और क्या कर्मफल दे।

लेकिन आज तुम शयन करने के पूर्व
अपने विचारों के प्रवाह, मनोभावों की
गति एवं कर्म पर स्वयं आत्मनिरीक्षण कर लेना,

क्या स्व-हित में रत रहे या पर-हित भी किया,
वाणी से पीड़ा दी या प्रशंसा की,
उद्देश्य की प्राप्ति के लिये कितने मील चले,
प्रभु को साथी बनाया या विस्मृत किया था।

स्वर्ग या नर्क की रेखायें तुमने
स्वयं अपने हस्त में लकीर बनाकर लिख दीं।

महाकाल अब क्या निर्णय ले,
जो तुमने अपने हस्त में लिखा -
वह बेवस है - वही क्रियान्वित करेगा, जो तुमने स्वयं लिखा है,
जीवन के पग पग पर
तुमने निर्णय स्वयं लिया था।

ध्येय दृष्टि

जीवन एक फुटबाल की फील्ड है,
हम उसमें एक खिलाड़ी हैं,
लक्ष्य हमारा अपने गेंद को गोल की ओर ले जाना,
बाधायें अनेक हैं- उस गेंद को गोल में
ले जाने के लिये।

प्रतिद्वन्दी बाधक है। प्रतिद्वन्दी एक नहीं
ग्यारह हैं। वे गेंद को आगे ले जाने से
रोकते ही नहीं वरन् उसको छीनकर दूसरी
दिशा में ले चलते हैं।

उद्देश्य पूर्ति के लिए अनन्त बाधायें।
वीर वही जो अपने पगों को दृढ़ रखे।
संकल्प की शक्ति ही विजय की ओर ले चलती है।
साहस न छोड़ें - विश्वास का श्वास न टूटे।
अहंकार ईश्वर को समर्पण करे, पगों में गति होगी।
पग आगे बढ़ेंगे। गेंद आगे बढ़ती चलेगी।
पग को परिस्थिति अनुकूल आगे-पीछे
दायें-बायें करना होगा। अन्त में विजय की दुन्दभि बजेगी।

हाँ ! हार से भी न डरना। हार सिखाती है -
स्वयं कहाँ गलती की है, हार ही जीत में परिवर्तित होगी।
हार से न डरो - आगे बढ़ो-बढ़ते चलो,
यह जीवन में जीतने की कला है।
फुटबाल का खेल- यह कला सिखा रही है-

लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए,
फुटबाल खेलो - अति उत्तम।
नही तब केवल ध्यान से देखना-
पगों का खेल है - आगे बढ़ने के लिये।

तीसरा जन्म

मेरा जन्म हुआ। परिवार में खुशी की
लहर थी। ढ़ोल-नगाड़े बजे। मिठाईयॉं बंटी।
जन्म मांसल शरीर का हुआ था लेकिन
परिवार के साथ वंश, जाति एवं धर्म की
उपाधि से विभूषित किया गया। मैं
अनजान था मुझको कौन-कौन सी उपाधि मिली।
क्या जाति मिली, कौन धर्म मिला।

मेरे झूलने की पलंग पर खिलौने रख दिये गये,
वही मेरे साथी थे।

किशोर अवस्था में पदापर्ण किया। पूज्य माता-पिता गुरूकुल ले चले।
गुरू के ज्ञान की गरिमा के समक्ष नत मस्तक था।
गुरू ने ज्ञान दिया। उनके ज्ञान की सीमा थी।
जो बताया वही मेरा ज्ञान था।
मैने ज्ञान की स्वयं खोज न की। अवधि पूर्ण होने पर,
गुरूकुल से विदा लिया।
मुझे 'द्विज' की उपाधि से विभूषित
किया गया क्योंकि ज्ञान के गर्भ से मेरा
दूसरा जन्म हुआ था।

गुरूकुल के द्वार के बाहर आया
शहनाई बज रही थी।
चारों ओर भीड़ थी।
आज नौका पर मेरा तीसरा जन्म होने वाला था।
नदिया बह रही थी। अनेक नौकायें खड़ी थी।
नौका मुझको चुनना था।
नौका चुनी। पतवार हाथ में ली।
पतवार चलाता रहा। रात्रि का अन्ध्कार व्यापक हुआ।
उत्ताल तरंगे देखता रहा।

आकाश में तारे जगमगाते रहे। चन्द्रिका का शीतल स्वर्णिम प्रकाश था।

प्रातः उषा की किरणों में देखा,
मेरी नाव नदिया के तट पर जहाँ से चढ़ा था
वहीं पर खड़ी थी।

देखा नाव की रस्सी लंगर से बंधी थी।
पतवार निरूद्‌देश्य चलाते रहे।
नाव पर विवेक के गर्भ से मेरा तीसरा जन्म न हुआ।

वायु में गति थी, अग्नि में गति थी,
स्वयं के उद्‌देश्य में गति न थी।
नौका खड़ी थी
उसमें तीसरा जन्म
स्वयं के विवेक के गर्भ से-
उद्‌देश्य का होना था,
    तभी नौका को दिशा मिलती,
    लेकिन तीसरा जन्म न हुआ,
    आज भी नौका तट पर खड़ी है।
निर्रथक, निरउद्‌देश्य
पार्थिव शरीर प्रथम जन्म का
केवल श्वासों को ले रहा है।

व्यक्त

मैनें प्रश्न किया- 'तुम कौन हो ?'
''मैं जन्म के पहले अव्यक्त था
माँ के गर्भ में प्रवेश किया
माँ मेरी जननी है
धरती पर अब मैं व्यक्ति कहलाता हूँ।
    प्रश्न- 'नाम क्या है' ?
उत्तर- आनन्द
पिता ने मुझे यह नाम दिया
मरणान्त तक मेरा यही नाम रहेगा।

जीवन में आनन्द मिले या न मिले
दुनिया जानेगी यह व्यक्ति 'आनन्द' है,
प्रश्न- मन कैसा है ?
उत्तर- कभी सुखी, कभी दुःखी, कभी भय कम्पित।
प्रश्न- चिन्तन कैसा है सकारात्मक या नकारात्मक ?
उत्तर- स्वयं से नियन्त्रित नहीं।

परिस्थितियाँ चिन्तन को प्रभावित करती हैं।
प्रश्न- बुद्धि पर शासन किसका है ?
उत्तर- मन का।
जन्म से पहले अव्यक्त आत्मा,
जन्म के साथ मननशील मन,
निर्णायक बुद्धि,
संवेदनशील हृदय - सब साथ आये,
आज धरती पर वह व्यक्त है।

व्यक्ति कैसा है ?
निर्णय आपको करना है
आत्मदर्शन से स्वयं का
वह स्वयं ही निर्णय करे।

आत्मा की कामना

अग्नि की कामना है
सूर्य से मिलने की
उसकी ज्वालायें ऊपर उठ रही हैं,

जल की कामना
सागर से मिलने की
सागर के जल से मेघ बन
आकाश में विचरण किया,
अब धरती पर
नदियाँ, नालों से बहते हुए
सागर में ही उसे समर्पित होना है।

वायु की कामना
व्यापक होने की
उसे बन्धन में कौन बाँध सके ?
हर घट में प्रवेश करे
औ' प्राणियों की श्वासों में
आवागमन करे,

धरती की कामना
प्राणियों ने जन्म लिया मेरी गोद में
मैं माँ हूँ
वह मेरे धन-धान्य से सुखी रहे,

भले ही मुझको
खोद-खोद कर विखण्डित करे
यदि मुझे अन्नकण दे

मैं सहस्त्रों जीवन बीज दूँ
वह धरती पुत्र है।

मानव मन की कामना क्या?
नयनों से सुन्दर देखूँ
कर्ण से प्रिय सुनूँ ,

वह कहे,
मैं इन्द्र हूँ
इन्द्रियों का भोग मेरा अधिकार
इन्द्रिय सुख मेरा स्वर्ग है,

और बुद्धि मन की दरिया में
निरन्तर प्रवाहित हो रही थी
निशा में विवेक सुप्त हो गया
जाग्रत कराने के लिए
कोई प्रिय मित्र न मिला,

अहं जागा
'मैं हूँ'
वह कौन ?
मुझे उस पर शासन करना है
क्योंकि मैं उससे अधिक शक्तिशाली हूँ ,
वैभवशाली हूँ।

अब अन्तः आत्मा ने पुकारा
हे प्राणी!
धरती पर हम तुम्हारे साथ आए
सदैव साथ रहे
तुम्हारे अहं ने तुमको मुझसे दूर किया

मैं तुम्हारे साथ हूँ
अन्तिम श्वास तक तुम्हारे साथ रहूँगी।

मैं तुमको आनन्द का उपहार
देने के लिये आयी हूँ किन्तु तुम बाहर दौड़ रहे
मेरे पास न आये।
तुम सुख-दुःख में डूबते-उतराते रहे
अशान्ति के तूफान में घिरते,
अन्धकार में गिरते रहे,
मुझसे न मिले।

मेरे प्रिय मित्र!
मेरे द्वार आओ
तुमको केवल अपना मन मुझको देना होगा
अपने अहं का समर्पण करना होगा
तब तुमको अपने हृदय में
आसीन कर सकूंगी।

यहाँ शान्ति का सदन है,
आनन्द का निर्झर है,
मैं तुम्हारी अन्तरात्मा प्रतीक्षारत,
अपनी ही आत्मा से मिल लो
यही कामना है।